प्रेम की झील में अनुग्रह के फूल (150 letters)

अनुक्रम

1/ जन्म-दिवस संदेश--"द्विज बनो"............................................................7 2/ सम्यक विचार से जीवन में क्रांति......................................................8 3/ ज्वलंत प्यास है द्वार--समाधि का......................................................8 4/ प्रेम मुक्ति है और मोह--बंधन............................................................9 5/ भीतर छिपी अनंत शांति और साम्राज्य की खोज....................................10 6/ प्रकाश-किरण का अनुगमन--मूल-स्रोत तक.............................................11 7/ स्वयं से मिलन ही योग है...................................................................11 8/ शून्यता है द्वार--अमृत का...............................................................12 9/ शाश्वत आनंद के राज्य में प्रतिष्ठा..............................................13 10/ अमृत-पाथेय......................................................................................14 11/ आनंद है--निर्विचार स्व-प्रतिष्ठा में.........................................15 12/ साधना की हवाएं और मन की धूल..........................................................16 13/ वर्तमान में जीना अदभुत आनंद है....................................................17 14/ ध्यान से खुलना--अंतस-चक्षु का......................................................17 15/ आनंद और संगीत--अकेलेपन का.............................................................18 16/ मिटना है मार्ग...............................................................................18 17/ ध्यान के बीज से सत्य-जीवन का अंकुरण............................................19 18/ जीवन-संघर्ष के बीच फलित--सम्यक शांति..........................................20 19/ निष्प्रश्न चित्त में सत्य का आविर्भाव......................................21 20/ उत्तर न खोज--प्रश्नों के साथ ही जी..............................................21 21/ सरोवर का किनारा--और जन्मों-जन्मों की प्यास...............................22 22/ जागरूकता से जन्म--प्रेम का...........................................................22 23/ ध्यान पाया, तो सब पा लिया..............................................................23 24/ जीत की आकांक्षा में ही छिपी है हार..............................................24 25/ "मैं मन हूं"--इस भ्रम से मुक्ति....................................................25 26/ प्रत्येक स्थिति है--अतिक्रमण की संभावना...................................25 27/ अनकहे शब्द और अनगाए गीत................................................................26 28/ निष्प्रयोजनता का सौंदर्य............................................................27 29/ समझौता न करें--विचार स्वातंष्य के लिए लड़ें...............................27 30/ कुण्डलिनी-ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन......................................................28 31/ पूर्ण होने का विज्ञान है--शून्य होना..........................................29 32/ अलौकिक अनुभवों की वर्षा--कुंडलिनी जागरण पर..............................30 1

33/ मौन-प्रवचन......................................................................................31 34/ शून्य के स्वर.................................................................................32 35/ शब्दहीन संवाद में दीक्षा.............................................................33 36/ संसार और संन्यास में द्वैत नहीं है.............................................33 37/ दीये की ज्योति का एक हो जाना--महासूर्य से..................................34 38/ अब अवसर आ गया है, इसलिए पुकारता हूं.............................................35 39/ जिसने स्वयं को जाना, वह आलोक से भर जाता है.................................35 40/ एक-एक बूंद से सागर भर जाता है.......................................................36 41/ मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ..................................................36 42/ अमृत-वर्षा की बाढ़..........................................................................37 43/ उतरो अब उस नासमझी में....................................................................38 44/ स्वर्ग के भी पार होना है...............................................................38 45/ समस्त आयामों में हो रहा--अनादि-अनंत संगीतोत्सव........................39 46/ नया नाम--पुराने से तादात्म्य तोड़ने के लिए.................................39 47/ निकट है तेरा नया जन्म....................................................................40 48/ संवादित प्रार्थना के स्वर...........................................................40 49/ समाधान--समाधि पर ही.......................................................................41 50/ ध्यान से मन हो जाता है अनासक्त.....................................................42 51/ स्वानुभव ही श्रद्धा है.................................................................42 52/ संन्यासी जाएंगे--अमृत-संदेश बांटने............................................43 53/ संभावी क्रांति की प्रतीति...........................................................43 54/ सिद्धियों में रस न लेना................................................................44 55/ अतीत को टूटने दो--मिटने दो............................................................44 56/ काम-ऊर्जा के अंतर्गमन का विधायक मार्ग.......................................45 57/ मैं हूं ही कहां--वही है..................................................................46 58/ तैयारी--भविष्य के लिए....................................................................46 59/ पदार्थ परमात्मा की देह है............................................................47 60/ गूंगे का गुड़...................................................................................47 61/ कूदो--असुरक्षा में, अज्ञात में, अज्ञेय में................................48 62/ अज्ञेय (न्नदादवूंइसम) से मिलन.....................................................49 63/ सीखने के लिए मन को सदा खुला रखो....................................................50 64/ गुरु सोए हुए ज्ञान को जगाने में निमित्त मात्र है.....................50 65/ गैरिक वस्त्र साधक के लिए मंगलदायी..............................................51 66/ अचेतन मन का पलायन--मृत्यु से बचने के लिए....................................51 67/ साहस को जगाओ--सक्रिय करो...............................................................52 68/ नव-संन्यास आंदोलन का महत कार्य....................................................52

69/ शब्दों की मूर्च्छा और विचारों का सम्मोहन..................................53 70/ आकाश में छलांग--खिड़कियों से निकल कर............................................54 71/ सहायता--देशातीत व कालातीत की.......................................................54 72/ चाह है जहां--वहां राह भी है...........................................................55 73/ स्वयं को बचाने में ही अज्ञान है...................................................56 74/ ध्यान--अशरीरी भाव--और ब्रह्म-भाव.................................................56 75/ ध्यान के बिना ब्रह्मचर्य असंभव...................................................57 76/ यात्राएं--सूक्ष्म शरीर से............................................................57 77/ अहंकार को समझो...............................................................................58 78/ संन्यास के संस्कार--पिछले जन्मों के...........................................59 79/ बंधन स्वयं का निर्माण है..............................................................59 80/ बढ़ो और मिटो--यही मेरी कामना है.....................................................60 81/ जो खाली हैं--वे भर दिए जाते हैं....................................................60 82/ मेरा भरोसा रख.................................................................................61 83/ अहंकार की अतिशय उपस्थिति.............................................................61 84/ ज्ञानोपलब्धि और अज्ञेय जीवन........................................................62 85/ बूंद-बूंद सुखों में--परमात्मा का विस्मरण..................................63 86/ सत्य का द्वार शास्त्र नहीं--समाधि है..........................................64 87/ मैं मृत्यु सिखाता हूं...................................................................65 88/ धर्म की दो अभिव्यक्तियां--तथाता और शून्यता..............................66 89/ सभी कुछ वही है................................................................................67 90/ स्वयं को खोल लो--आकाश की भांति--विस्तीर्ण, मौन, निःशब्द...........68 91/ मन के द्वंद्वों के प्रति सजगता....................................................69 92/ जीवन एक अभिनय है............................................................................70 93/ शास्त्रों से मनपसंद अर्थ निकालने की कुशलता..............................70 94/ आदमी की गहन मूर्च्छा.....................................................................71 95/ बीज को लड़ना भी होगा--मिटना भी होगा..............................................72 96/ प्रभु के द्वार पर कोई भी अपात्र नहीं है.....................................72 97/ मार्ग की कठिनाइयां--और जीवन-शिखर छूने की अभीप्सा.....................73 98/ पार उठो--विचारों के.......................................................................73 99/ समग्र प्राणों की आहुति--और सत्य का विस्फोट...............................74 100/ ध्यान की यात्रा में विचारों का बोझ...........................................74 101/ बहुत तरह की अग्नियों में जलना होगा--निखरने के लिए..................75 102/ मार्ग चुनने के पहले स्वयं की पहचान जरूरी................................75 103/ हृदय की सरलता ही तो उसका द्वार है..............................................76 104/ प्यास चाहिए--पुकार चाहिए............................................................77

105/ समर्पित हृदय की अंतर्साधना.......................................................77 106/ कांटों को गिनते रहना पागलपन है..................................................78 107/ शांति का द्वार--जीवन की समग्र स्वीकृति....................................78 108/ विवाद--अज्ञानियों के...................................................................79 109/ पूर्ण संकल्प में तुम स्वयं ही मंजिल हो....................................80 110/ संसार में अभिनेता की भांति जीना योग्य है................................80 111/ सहजता ही संन्यास है.....................................................................81 112/ मन से मुक्ति.................................................................................81 113/ व्यक्ति का विसर्जन--प्रकाश में.................................................82 114/ अहिंसा--अनिवार्य छाया ध्यान की.................................................83 115/ विचारों का विसर्जन......................................................................83 116/ गहरे ध्यान में दर्शन--बिंदु का..................................................84 117/ "स्व" से मुक्ति ही मोक्ष है........................................................84 118/ चक्रों के खुलते समय पीड़ा स्वाभाविक..........................................85 119/ स्वप्न-सा है--यह जीवन..................................................................85 120/ सोया हुआ आदमी--जीवन के तथ्यों के प्रति.....................................86 121/ गहरी निद्रा का बोध.......................................................................86 122/ पकने दो--प्यास को.........................................................................87 123/ चित्त के दर्पण पर जन्मों-जन्मों की धूल....................................88 124/ प्रतिपल स्मरण रख--जीवन नाटक है..................................................88 125/ साधना के कीमती क्षणों में सजगता................................................89 126/ नया जन्म--शरीर के पार--मन के पार.................................................90 127/ सत्य एक है--बस, नाम ही अनेक हैं...................................................90 128/ देखो अद्वैत को--पहचानो अद्वैत को..............................................91 129/ बढ़ो, बहो--सागर की ओर.....................................................................91 130/ मृत्यु है द्वार--अमृत का.............................................................92 131/ जीओ जीवन को--पीओ जीवन को..............................................................93 132/ ध्यान में पूरी बाजी लगाओ............................................................93 133/ पीड़ा प्रार्थना बने--तो ही मुक्ति है..........................................94 134/ एक ही है मंत्र--समर्पण.................................................................94 135/ आंसुओं से सींचना--प्रार्थना के बीज को......................................95 136/ अनेक द्वैतों को समाहित किए हुए--अद्वैत....................................95 137/ भीतर डूबो और भीड़ को स्वयं से बाहर करो.......................................97 138/ विचारों से गहरी--भावना................................................................97 139/ स्वयं में विश्वास प्रतिभा है.....................................................98 140/ अंतर्ज्योति.................................................................................99

141/ बस, सीधी चली आ...............................................................................99 142/ अविचलता से स्वयं का अनुसरण करो................................................100 143/ कर्मों का चट्टानी ढेर...............................................................100 144/ धैर्य और प्रतीक्षा....................................................................101 145/ समर्पण है द्वार--परम जीवन का....................................................102 146/ बुद्धि की सीमा...........................................................................102 147/ मृत्यु-बोध और आत्म-क्रांति......................................................103 148/ बस, ज्ञान ही मुक्ति है...............................................................103 149/ मन को भी जो देखता और जानता है--वही हो तुम................................104 150/ घूंघट के पट खोल..........................................................................105

1/ जन्म-दिवस संदेश--"द्विज बनो"

प्रिय विजयबाबू,
स्नेह।

यह जान कर बहुत प्रसन्न हूं कि जीवन-यात्रा के तेईस वर्ष तुम्हारे पूरे हो रहे हैं।
इस तरह बहुत वर्ष तुम पूरे करो, यह कामना करता हूं।
जीवन एक बहुमूल्य अवसर है।
पर उसका मूल्य जीने वाले पर निर्भर होता है।
व्यक्ति जो अपने को बनाता है, वही बन पाता है।
प्रत्येक स्वयं अपना निर्माण है।
ईश्वर और शैतान दोनों की संभावनाएं हममें होती हैं।
मनुष्य तो केवल बीच का सेतु-मात्र है।
हम पीछे भी लौट सकते हैं, और आगे भी जा सकते हैं।
पीछे लौटना जीवन को व्यर्थ खो देना है।
आगे बढ़ने में ही सार्थकता है।
आगे बढ़ने के इस संकल्प को ही मैं सच्चा जन्म कहता हूं।
उस दिन ही मनुष्य "द्विज" बनता है।
एक जन्म मां-बाप से मिलता है। वह शरीर का जन्म है।
दूसरा जन्म--आत्मा का जन्म--स्वयं को देना पड़ता है।
संकल्प और साधनापूर्ण जीवन-योजना से यह होता है।
यह तुम करो, ऐसी मेरी भावना है।
तुम्हारी वर्षगांठ पर यही मेरा संदेश है।
शरीर नहीं आत्मा को जगाओ--वही सच्चा जन्म और जीवन का आरंभ है।
उसे पाकर ही शांति और आनंद के द्वार खुलते हैं और प्रभु निकट आता है।
सबको मेरे विनम्र प्रणाम!

रजनीश के शुभाशीष
14-3-1961 (प्रभात)

(प्रतिः श्री विजयबाबू देशलहरा, बुलढाना, महाराष्ट्र)

2/ सम्यक विचार से जीवन में क्रांति

प्रिय कोठारी जी,
स्नेह।

आपका पत्र मिला, मैं तो चांदा से लौट कर पत्र की बाट में ही था।
यह जान कर आनंदित हूं कि चांदा में हुई चर्चाओं पर विचार कर रहे हैं।
सम्यक विचार से जीवन में क्रांति हो जाना कठिन नहीं है।
विचार तो मनुष्य करता ही है। असली प्रश्न उसके विचारों की दिशा का है।
विचार अदभुत शक्ति है।
विकार से संयुक्त हो जाए विचार, तो पशु तक पहुंचा देता है।
और, विवेक से संयुक्त हो, तो प्रभु भी बनाने की सामर्थ्य उसमें है।
ईश्वर सम्यक विवेक-शक्ति दे, यह कामना करता हूं।
नव-वर्ष के लिए यही मेरी शुभकामना है।

रजनीश के प्रणाम
14-11-1961

(प्रति: श्री भीखमचंद कोठारी, हिंगोली, महाराष्ट्र)

3/ ज्वलंत प्यास है द्वार--समाधि का

प्रिय कोठारी जी,
स्नेह।

संध्या बीते अंधेरे में बैठा हूं। कल से आपका स्मरण है। पत्र मिला है,
तब से आपके संबंध में सोचता हूं।
एक प्यास आपमें अनुभव करता हूं।
आपमें जीवन के सत्य को जानने की उत्कट अभिलाषा है।
उस प्यास को और गहराना है।
इतना कि प्यास ही प्यास रह जाए।
फिर, द्वार अपने से खुल जाते हैं।
हम चाहना ही नहीं जानते, अन्यथा सत्य कितना निकट है! सत्य पाने की चाह को श्वास-श्वास में भर लेना है।
पूरा मन-प्राण उसके लिए ही जल उठता है।
भक्ति-योग में इसे "विरह" कहा है।
यह जलन पहुंचा देती है।
यह जलन समाधि में ले जाती है।
यह हो जाने पर अचानक ध्यान घट जाता है।
चित्त स्थिर हो जाता है।
दौड़ छूट जाती है।
और, जो दिखता है, उसका शब्द में कोई नाम नहीं है।
पर, वह अनाम, प्यास को सदा को ही मिटा जाता है।
इतना आश्वासन है कि प्यास है, तो प्यास मिटाने का मार्ग भी है।
और, वहां पहुंचना भी है, जहां कि पूर्ण तृप्ति है।

रजनीश के प्रणाम
7-12-1961

(प्रति: श्री भीखमचंद कोठारी, हिंगोली, महाराष्ट्र)

4/ प्रेम मुक्ति है और मोह--बंधन

प्रिय कोठारी जी,
स्नेह।

प्रेम व मोह में भेद पूछा है।
मैं सब भेदों के पीछे एक ही भेद देखता हूं।
वह एक मूल भेद ही सबमें प्रकट होता है।
वह भेद क्या है?
मैं या तो अपने को जानता हूं या नहीं जानता हूं।
"मैं कौन हूं?" यह न जानने से जो प्रीति पैदा होती है, वह मोह है।
"मैं कौन हूं"--यह जानने से प्रेम आता है।
प्रेम ज्ञान है।
मोह अज्ञान है।
प्रेम निरपेक्ष है--सबके, समस्त के प्रति है।
वह "पर" निर्भर नहीं है। वह स्वयं में है।

वह "किसी से" नहीं होता है। बस, होता है।
बुद्ध उसे करुणा कहते हैं।
महावीर उसे अहिंसा कहते हैं।
वह अकारण है, इसलिए नित्य है।
मोह अनित्य है।
कारण से होता है।
"पर" निर्भर है।
सापेक्ष है।
एक के प्रति है।
इसलिए, दुख का मूल है।
प्रेम आता है, जब मोह जाता है।
मोह-मुक्ति प्रेम से होती है।
इससे प्रेम पा लेना, सब कुछ पा लेना है।
प्रेम मुक्ति है।

रजनीश के प्रणाम
14-2-1962
(प्रति: श्री भीखमचंद जी कोठारी, हिंगोली, महाराष्ट्र)

5/ भीतर छिपी अनंत शांति और साम्राज्य की खोज

प्रिय कोठारी जी,
स्नेह।

आपका प्रीतिपूर्ण पत्र मिला है।
जीवन में हो रहे परिवर्तन की बात आपने कही है।
यह तो प्रारंभ है।
मनुष्य के भीतर अनंत शांति की संभावना है।
द्वार भर खोलने की बात है।
और, एक साम्राज्य का स्वरूप से मालिक होते हुए मनुष्य कैसी दीनता और दरिद्रता और दुख में जीता है, यह देख कर बहुत दया आती है।
स्वरूप में उतरने का जो प्रयोग शुरू किया है, उसे सतत जारी रखना है।
वह अभी छोटा सा बीज सा दिखने वाला प्रयोग वृहत परिणाम लाएगा।
एक दिन अनायास अनपेक्षित जाग कर देखेंगे कि सब बदल गया है।
दुख कहीं है ही नहीं।
और, संसार ही मुक्ति हो गया है।

रजनीश के प्रणाम
13-11-1962 (प्रभात)

(प्रति: श्री भीखमचंद कोठारी, हिंगोली, महाराष्ट्र)

6/ प्रकाश-किरण का अनुगमन--मूल-स्रोत तक

प्रिय जया बहिन,
प्रणाम।

एक अरसा हुआ आपको पत्र नहीं दिया हूं, पर स्मरण तो सदा बना रहता है।
आपकी जीवन-ज्योति निरंतर प्रभु-चरणों को खोज रही है।
वह प्रयास सफल हो, इसकी प्रार्थना सदा बनी रहती है।

अंधेरा है; दुख है; बंधन है।
पर, एक प्रकाश की किरण भी दीख जाए, तो उसके अनुगमन से इन सबके बाहर हुआ
जा सकता है।
उसका अनुगमन प्रकाश के मूल-स्रोत तक पहुंचा देता है।
इस प्रकाश-अनुगमन का नाम ही साधना है।
समाधि-योग के जो आनंद-अनुभव प्रतीत हों, उन झलकों के पीछे चलते चलना है।
उनका पीछा करना है।
फिर, आज जो क्षण को मिलेगा, कल वही सदा को मिल जाता है।
मैं आनंद में हूं।
क्या मेरा आनंद वहीं से आपको अनुभव नहीं होता है?

रजनीश के प्रणाम
4 जून, 1963

(प्रतिः सुश्री जया शाह, बंबई)

7/ स्वयं से मिलन ही योग है

प्रिय आत्मन्,

मैं आनंद में हूं।
प्रभु के सान्निध्य में कितना आनंद है!
जरा-सा मोड़ लेते ही कितने रहस्यमय लोक के दर्शन होते हैं!
इंद्रियों के इस पार दुख और पीड़ा है।
बंधन के अतिरिक्त यहां और कुछ भी नहीं है।
पूरे जीवन उनकी मृग-मरीचिका में दौड़ कर अवसाद और पराजय के सिवाय और क्या मिलता है?
और, इंद्रियों के पीछे कौन छिपा बैठा है?
उसका द्वार खोलते ही सब मिल जाता है--जिसकी खोज थी, जन्मों-जन्मों से।
तृष्णा मिट जाती है।
प्यास विलीन हो जाती है।
और, हो जाता है चैतन्य--परिपूर्ण।
इंद्रियों के पीछे झांकना है।
इसके सिवाय अशांति से जागने का और अशांति को जीतने का और कोई मार्ग नहीं है।
और, प्रत्येक झांक सकता है।
जो इनके बाहर झांक रहा है, वह इनके भीतर भी झांक सकता है।
बाहर देखने पर, मिलन होता है "पर" से।
भीतर देखने पर, मिलन होता है "स्वयं" से।
यह मिलन ही योग है।
और, यह मिलन कैसे नृत्य से, कैसे संगीत से भर देता है! पर, मिलन हो, तब इस नृत्य की बात करनी है।

रजनीश के प्रणाम
14-8-1963

(प्रति: श्री भीखमचंद कोठारी, हिंगोली, महाराष्ट्र)

8/ शून्यता है द्वार--अमृत का

प्रिय बहन,
स्नेह।

दीखता है: साधना अच्छी चल रही है।
चित्त शांत होता जा रहा है; शांति को प्रगाढ़ होने दें।
भय न करें, अपने को पूर्णतया शून्य में छोड़ दें।
उसी भांति सब खोकर स्व की उपलब्धि होती है।
एक अर्थ में सबके प्रति मर कर ही जीवन प्राप्त होता है।
साधना मृत्यु का वरण ही है।
कैसा रहस्य है कि जो जीवन बचाना चाहते हैं, वे जीवन खो देते हैं! उनका पूरा जीवन ही मृत्यु जैसा हो जाता है। और, वे, जो जीवन खोने को राजी हो जाते हैं, उनके लिए अमृत के द्वार प्रभु खोल देता है!
पूर्ण बिल्कुल निकट है: हमें शून्य होने की शर्त भर पूरी करनी है।
मैं आनंद में हूं।
सबको परिवार में मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम
7-11-1963
(प्रति: सुश्री जया शाह, बंबई)

9/ शाश्वत आनंद के राज्य में प्रतिष्ठा

प्रिय चिदात्मन्,

आपका प्रीतिपूर्ण पत्र मिला है।
आपने एक अभिशाप को वरदान अनुभव किया है, यह जान कर मैं अत्यंत आनंदित हुआ हूं।
शरीर तो आज है, कल नहीं होगा।
पर, उसके भीतर कुछ है--जो कल भी था, आज भी है और कल भी होगा।
वस्तुतः, उस अंतस के जगत में आज-कल नहीं है।
वहां समय नहीं है।
वह तो है: शाश्वत--और सनातन।
वह शुद्ध "होना मात्र" है।
इस शाश्वत को अनुभव करना है।
उसके अनुभव के अभाव में जीवन में सब-कुछ भी हो, तो भी कुछ भी नहीं है।
क्योंकि, उसके अतिरिक्त शेष सब जल पर खींची गई लकीरों की भांति है।
और, उस अनुभव के सदभाव में यदि जीवन में कुछ भी न हो, तब भी सब-कुछ है।
क्योंकि, उस अनुभव से ही वास्तविक जीवन का प्रारंभ है।
वही है जीवन, शेष सब मृत्यु है।
इसलिए ही, जिनके पास कुछ भी नहीं है, उनके लिए भी समृद्धि और संपदा का द्वार बंद नहीं होता है।
सब-कुछ के अभाव में भी बादशाह हुआ जा सकता है।
सच तो यह है कि जिनके पास कुछ था, उन्हें असली बादशाहत पाने के लिए उसे छोड़ देना पड़ा था।
मैंने जब इस बादशाहत को अनुभव किया, तो मैंने पाया कि दुख तो था ही नहीं, अंधेरा तो था ही नहीं।
मैं (उसके पहले) अपने प्रति ही पीठ किए था।
और, वही था दुख, वही था अंधकार।
केवल "स्व" को जानने की बात है और आनंद के राज्य में प्रतिष्ठा हो जाती है।

हम प्यासे हैं और आंखें दिशा-दिशा में तृप्ति को खोज रही हैं।
पर, क्या हम प्यास के पीछे भी झांक कर देखेंगे?
सागर वहां है।
केवल मुड़ कर देखना है, और सब पा लिया जाता है।

आशा है कि बंबई से पूर्ण स्वस्थ होकर आप लौटेंगे।
बहुत हुआ, अब बीमारी को छोड़िए भी!
सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम
12-1-1964
(प्रति: श्री भीखमचंद देशलहरा, बुलढाना, महाराष्ट्र)

10/ अमृत-पाथेय

प्रिय विजय,
स्नेह।

मैंने इस बीच कितनी बार सोचा कि दो-शब्द तुम्हें लिखूं, पर वे दो-शब्द
भी खोजे नहीं मिले।
सांत्वना दे सकें, ऐसे शब्द हैं भी नहीं।
इसलिए, चुप ही रह गया था।
पर कभी-कभी मौन ही कुछ कहने का एकमात्र मार्ग होता है।
श्री भीखमचंद जी के शरीर-त्याग की खबर मुझे दो-तीन दिन बाद ही मिल गई थी।
मैं जानकर ही "शरीर-त्याग" (शब्द का) प्रयोग कर रहा हूं।
जब भी उनसे मिला था, उनकी आंखों में मुझे अनंत और अमृत के लिए एक तीव्र प्यास अनुभव हुई थी।
फिर, अनेक बार जब उनसे मिला, तो उनके कृश और दुबले हो गए शरीर को देख कर दुख हुआ था।
लेकिन, आंखों में आ गई शांति, शक्ति और ज्योति को देख कर आनंद भी हुआ था।
यह अनुभव मुझे हुआ था कि उन्होंने कुछ "पाया" है।
शरीर के पार जो है, उसकी किरण के दर्शन उन्हें हो रहे थे।
इसलिए ही, मृत्यु का भी वे आनंद से स्वागत कर सके।
यह बहुत बड़ी बात है।
शायद, जीवन में इससे बड़ी कोई दूसरी बात ही नहीं है।
आनंद से मृत्यु का स्वागत, अमृत के अनुभव की सूचना है।
जीवन की सार्थकता--मृत्यु के भी आनंद में परिणत हो जाने में है।
वस्तुतः, जिसे हम मृत्यु कहते हैं, वह जीवन का नहीं, केवल जन्म का अंत है।
जीवन--जन्म और मृत्यु दोनों के अतीत है।
जो इस जीवन की हलकी सी भी झलक पा लेता है, मृत्यु उसे मृत्यु नहीं रह जाती है।
और, जिसे वैसी झलक का सौभाग्य मिलता है, वह अपने आगे की यात्रा पर सम्यक पाथेय लेकर जा रहा है।
मैं देख रहा हूं कि श्री भीखमचंद जी के नाम से जो यात्री हमारे बीच था,
वह ऐसा ही पाथेय लेकर अपनी अनंत यात्रा पर गया है।
हम उस यात्री के लिए मंगल-यात्रा की कामना करें।
और, उनके जाने के दुख का कुछ कारण नहीं है।
हम जिस जगत में हैं, वह सच ही कोई स्थायी आवास नहीं है।
आज नहीं कल, हमें भी अनंत की यात्रा पर जाना है।
11

यह दिख सके, तो दुख विलीन हो जाता है।
अज्ञान ही दुख है।

रजनीश के प्रणाम
8-5-1965

(प्रति: श्री विजयबाबू देशलहरा, बुलढाना, महाराष्ट्र)

11/ आनंद है--निर्विचार स्व-प्रतिष्ठा में

प्रिय सोहन,
प्रेम।

धूप घनी हो गई है और मैं एक वृक्ष की छाया में बैठा हूं। मैं अकेला हूं
और आकाश में उड़ते बादलों को देख रहा हूं।
बादलों की भांति ही बेजड़, विचार होते हैं।
और, जैसे बादल आकाश को घेर लेते हैं, ऐसे ही विचार आत्मा को।
बादलों के हटते ही आकाश के दर्शन होते हैं।
और, विचारों के हटते ही आत्मा के।
और, विचारशून्य हो, स्वयं को जानना ही आनंद है।
जब कोई इस भांति स्वयं में स्थित होता है, तभी आनंद को उपलब्ध हो जाता है।
जिन्हें आनंद खोजना हो, उन्हें निर्विचार को खोजना होता है।
माणिक बाबू को प्रेम। बच्चों को आशीष। जल्दी ही तुझसे मिलने की आशा में।

रजनीश के प्रणाम
4-6-1965
गाडरवारा
(प्रति: सुश्री सोहन बाफना, पूना)

12/ साधना की हवाएं और मन की धूल

प्रिय सोहन,
प्रेम।

जोर की हवाएं बह रही हैं। बदलियां उड़ी जाती हैं और छिपा सूरज बाहर निकल आया है।
अभी-अभी आकाश कैसा ढंका था? ऐसा ही मनुष्य-मन है!
साधना की हवाएं उसकी सारी धूल को उड़ा ले जाती हैं और दर्पण स्वच्छ हो जाता है।
दर्पण मिटता तो है नहीं, बस, ढंक जाता है।
मन के दर्पण की धूल से भरे होने की बात तूने लिखी है।
वह धूल हट जावेगी।
धूल कोई शक्ति नहीं है।
एक बार उसे हटाने का स्मरण भर आ जाने की बात है।
माणिक बाबू को मेरा स्मरण दिलाना और बच्चों को भी।

रजनीश के प्रणाम
12 जून, 1965

12

दोपहर
(प्रति : सुश्री सोहन बाफना, पूना)

## 13/ वर्तमान में जीना अदभुत आनंद है

प्यारी सोहन,

सुबह हो गई है। सूरज निकल रहा है और रात्रि की सारी छायाएं विलीन हो गई हैं।
कल बीत गया है और एक नये दिन का जन्म हो रहा है।
काश! इस नये दिन के साथ हम भी नये हो पावें?
चित्त पुराना ही रह जाता है। वह बीते कल में ही रह जाता है। और इस कारण नये के स्वागत और स्वीकार में वह समर्थ नहीं हो पाता।
चित्त का प्रतिक्षण पुराने के प्रति मर जाना बहुत आवश्यक है।
तभी वह वर्तमान में जी पाता है।
और, वर्तमान में जीना अदभुत आनंद है!
वहां सबको मेरे प्रणाम कहना।
माणिक बाबू को प्रेम। बच्चों को आशीष।

रजनीश के प्रणाम
26-6-1965

(प्रति : सुश्री सोहन बाफना, पूना)

## 14/ ध्यान से खुलना--अंतस-चक्षु का

प्रिय आत्मन्,
प्रेम।

आपके दोनों पत्र मिले हैं।
बहुत विचार में न पड़ें।
विचार से सत्य तक जाने का कोई मार्ग नहीं है।
मार्ग है : ध्यान।
उसकी ओर जितने बढ़ेंगे, उसी मात्रा में शांति, आनंद और आत्मा की ओर गति होगी।
ध्यान जब पूर्ण होता है, तभी अंतस-चक्षु खुलते हैं।
और, सत्य का साक्षात होता है।
सत्य तो सतत मौजूद है, लेकिन हम अंधे हैं।

रजनीश के प्रणाम
2-3-1966
जबलपुर

(प्रतिः श्री आर. के. नंदाणी, राजकोट, गुजरात)

## 15/ आनंद और संगीत--अकेलेपन का

प्यारी सोहन,

तेरा पत्र। पागल! अकेला रहना तो बड़ा आनंद है।
सच्चाई भी यही है कि हम सब अकेले हैं।
भीड़-भाड़ में कब तक स्वयं के सत्य को भुलाया जा सकता है?
एक दिन तो अकेला--बिल्कुल अकेला होना ही पड़ता है।
उसके पूर्व ही जो अकेला होने में आनंद अनुभव करने लगता है, उसकी जीवन-यात्रा बहुत सरल और शांतिपूर्ण हो जाती है।
उस एकांत घर में--भीड़ का विचार न कर, मन को भी शांत और शून्य में ले जाया कर।
मौन बैठा कर।
आकाश को देखा कर।
फिर, धीरे-धीरे एक अभिनव आनंद प्रकट होगा और तेरे प्राणों को स्वर्गीय संगीत से भर देगा।
शांति में, मौन में ही तो परमात्मा के संगीत की अनुभूति होती है।
माणिक बाबू को प्रेम।
बच्चों को शुभाशीष।

रजनीश के प्रणाम
3-5-1966

(प्रति: सुश्री सोहन, पूना)

16/ मिटना है मार्ग

प्रिय आत्मन्,
प्रेम।

आपके पत्र।
धैर्य से अनुसंधान करें।
सत्य तो निकट है, किंतु अधैर्य के कारण हम उसे देख नहीं पाते हैं।
मन जब शांत होता है--और धैर्य में--तो मिट ही जाता है।
और, तब जो शेष है, वही है सत्य।
इसलिए, खोेजना कम है, खोना ज्यादा है।
बीज स्वयं को खोकर वृक्ष बनता है--और बूंद सागर।
वही मार्ग है।
मिटना मार्ग है।
मृत्यु से जो राजी है, उसके लिए अमृत के द्वार खुल ही गए।
"मैं" के अतिरिक्त स्वयं तक पहुंचने में और कोई बाधा नहीं है।
वहां सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
24-6-1966
जबलपुर

(प्रति: श्री आर. के. नंदाणी, राजकोट)

17/ ध्यान के बीज से सत्य-जीवन का अंकुरण

परम प्रिय,
प्रेम।

पत्र मिले हैं।
धैर्य से समय की प्रतीक्षा करें।
बीज बो दिए गए हैं, निश्चय ही समय पाकर वे अंकुरित होंगे।
अति जल्दी में हानि ही पहुंच सकती है।
ध्यान के बीज से सत्य जीवन का अंकुरण होगा ही।
लेकिन, अत्यंत प्रेमपूर्ण प्रतीक्षा आवश्यक है।
और, मैं निश्चिंत हूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि आप अनंत प्रतीक्षा के लिए भी समर्थ हैं।

रजनीश के प्रणाम
2-12-1966
जबलपुर
(प्रति: श्री आर. के. नंदाणी, राजकोट)

18/ जीवन-संघर्ष के बीच फलित--सम्यक शांति

प्रिय नर्मदा (नीता),
प्रेम।

तेरा पत्र।
हृदय में जो हो रहा है, उसे जान कर आनंदित हूं।
ध्यान गहरी से गहरी शांति ले आएगा।
अच्छे लक्षण प्रकट हो रहे हैं।
लेकिन, स्मरण रहे कि शांति भी दो प्रकार की होती है।
एक जीवित की और एक मृत की।
मैं दूसरे प्रकार की शांति के पक्ष में नहीं हूं।
क्योंकि, वह वस्तुतः शांति ही नहीं है।
जीवन से भागकर जो शांति मिलती है, वह झूठी है।
वह शांति नहीं, वरन अशांति को प्रकट करने वाले अवसरों का अभाव मात्र है।
इसलिए, यदि वास्तविक शांति चाहती हो, तो जीवन से मुख मोड़ने वाली भूल
से बचना।
जीवन के संघर्ष में जो शांति सत्य है, बस, वही सत्य है।
जीवन-युद्ध को छोड़ कर भागना नहीं है।
वरन, उसमें ही खड़े होकर स्वयं को जीतना है।
भागना संन्यास नहीं, वरन निपट कायरता है।
संन्यास तो स्वयं का इतना आमूल परिवर्तन है कि फिर संसार रह ही नहीं जाता है।
भागने में तो संसार का भय है।
और, संन्यास तो चित्त की वह दशा है, जब संसार स्वप्न की तरह रह जाता है।
न भोगने योग्य--न भागने योग्य।
संसार तो, बस, जागने योग्य है।
श्री नंदाणी जी को मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
3-12-1966

(प्रति: कुमारी एन. आर. नंदाणी, राजकोट)

19/ निष्प्रश्न चित्त में सत्य का आविर्भाव

मेरे प्रिय,
प्रेम।

आपका पत्र पाकर बहुत आनंदित हूं।
प्यास हो सत्य की, तो ऐसी हो।
आह! प्रश्न भी नहीं है!
तब जान रखना कि उत्तर भी दूर नहीं है।
निष्प्रश्न चित्त में ही तो वह उपलब्ध होता है।
वहां सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
2-12-1967

(प्रति: श्री चंद्रकांत पी. सोलंकी, सुरेन्द्रनगर, गुजरात)

20/ उत्तर न खोज--प्रश्नों के साथ ही जी

प्यारी शोभना,
प्रेम।

तेरा पत्र और तेरे प्रश्न।
लेकिन, क्या हर प्रश्न का उत्तर खोजना आवश्यक ही है?
और, क्या उत्तर खोजना प्रश्न की हत्या करना नहीं है? नहीं--नहीं--ऐसी हिंसा में मत पड़।
प्रश्न ही इतने प्यारे हैं कि पर्याप्त हैं।
उनके साथ ही जी।
पागल! उत्तरों के साथ जीना भी कोई जीना है?
वह तो मर जाने का ही दूसरा नाम है।

रजनीश के प्रणाम
18-4-1968
(प्रति: मा योग शोभना, बंबई)

21/ सरोवर का किनारा--और जन्मों-जन्मों की प्यास

प्यारी शोभना,
प्रेम।

तेरे पत्र मिले हैं। उनमें तूने अपना हृदय ही उंड़ेल दिया है।
मैं तेरी अनंत प्रतीक्षा को जानता हूं।
जन्म-जन्म की वह प्यास ही तुझे मेरे इतने निकट ले आई है।
वह प्यास ही तो मेरे और तेरे बीच सेतु बन गई है।
आह! लेकिन क्या तू सरोवर के किनारे ही खड़ी रहेगी?
पगली! सरोवर के किनारे खड़े रहने से तो प्यास नहीं बुझती है?

रजनीश के प्रणाम
5-8-1968

(प्रति: मा योग शोभना, बंबई)

22/ जागरूकता से जन्म--प्रेम का

प्यारी सोनी,
प्रेम।
वर्षों से प्रतीक्षित तेरा पत्र पाकर कितना खुश हूं--कैसे कहूं?
जालंधर से लौटते ही तेरा पत्र मिला है।
वहां तेरी याद रोज ही आती रही--राज को देख कर।
वह पागल भी मेरे प्रेम में पड़ गई है।
(लेकिन, उसने कहा है कि तुझे बताऊं नहीं--शायद तुझे चौंकाना चाहती होगी! )
उसे स्टेशन पर पीछे रोते छोड़ आया हूं।
उसके आंसुओं में जो प्रार्थना थी, वह अब भी मेरे कानों में गूंज रही है।

सावधान और सचेत जीने की कला का नाम ही ध्यान है।
यह सावधानी किसी एक के प्रति नहीं--स्वयं में होनी चाहिए--समग्र के प्रति।
किसी वस्तु के प्रति नहीं--बस, सावधान होना है।
सचेतनता, जागरूकता चाहिए--जो भी है, उसके प्रति।
शून्य हो, तो शून्य के प्रति भी। और, प्रेम इसी जागरूकता से जन्मता है।
प्रेम अंधापन नहीं है। सच तो यह है कि बस, प्रेम ही आंख है।
आह! प्रभु को देख सकने वाली आंख वही है।

"मैं कौन हूं?" इसे तीव्रता से गुंजाना है।
उसके पीछे उत्कट जिज्ञासा चाहिए।
नहीं तो वह भी मंत्र जैसा ही नींद लाने वाला हो सकता है।
उसे तो एक तीर की भांति प्राणों में प्रवेश कराना है।
ताकि, बस, वही शेष रहे और कुछ भी नहीं।

और, ध्यान में मैं सामने आ जाऊं, तो चुपचाप साक्षी बनी रह।
जो भी हो--उसे बस, देख।
वहां सबको मेरे प्रणाम कहना।

रजनीश के प्रणाम
23-12-1968(प्रभात)
(प्रति: सुश्री स्वर्णलता बत्रा, बंबई)

23/ ध्यान पाया, तो सब पा लिया

प्यारी सोनी,
प्रेम।

तेरा पत्र मिला है।
ध्यान में डूब।
क्योंकि, उसी सागर में डूबने से वह मिलता है, जिसकी तलाश है।
ध्यान ही एकमात्र धन है।
इस सूत्र की मन में गांठ बांध ले।

ध्यान नहीं पाया, तो कुछ नहीं पाया।
ध्यान गंवाया, तो सब-कुछ गंवाया।
और, ध्यान पा लिया, तो सब पा लिया।
और, तू पा सकती है।
क्योंकि, मैं तो तेरी उन गहराइयों को भी जानता हूं, जिन्हें तू नहीं जानती है।
मैं तुझे पहचानता हूं।
सबको वहां मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
9-1-1969

(प्रति: सुश्री स्वर्णलता बत्रा, बंबई)

24/ जीत की आकांक्षा में ही छिपी है हार

मेरे प्रिय,
प्रेम।

हार का अनुभव हुआ, यह शुभ है।
असल में जीत की आकांक्षा में ही हार छिपी हुई है।
हार और जीत एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
फिर, एक, दूसरे के बिना कैसे आ सकता है?
लाओत्से का वचन है कि "धन्य हैं वे लोग, जो हारे हुए ही हैं, क्योंकि उन्हें हराया नहीं जा सकता।"

रजनीश के प्रणाम
(जबलपुर)

(प्रति: स्वामी आनंद मैत्रेय, पटना)

25/ "मैं मन हूं"--इस भ्रम से मुक्ति

मेरे प्रिय,
प्रेम।

आपकी सबसे बड़ी भूल यही है कि मन को ही "मैं" मान बैठे हैं।
और, इसी से आपका चित्त क्रमशः दुखी, उदास और खिन्न होता गया।
लेकिन, वह जो दुख, अनुभव करता है, निस्संदेह दुख से पृथक और परे है।
इसलिए, आप दुख नहीं हैं।
इस भ्रम को उसकी पूर्णता में देख लेना ही उससे मुक्त हो जाना है।
कुछ होने के भाव को जाने दें और केवल जीएं।

रजनीश के प्रणाम

(प्रति: स्वामी आनंद मैत्रेय, पटना)

26/ प्रत्येक स्थिति है--अतिक्रमण की संभावना

प्रिय मथुराबाबू,
प्रेम।

पत्र मिला है। माथेरान (शिविर में) जरूर आ जावें।
और, मन की जो स्थिति है, वह शुभ है।
लेकिन, शुभ है--उसे अतिक्रमण (ैंतंदेबमदक) करने के एक अवसर की भांति।
वस्तुतः तो, जो भी है, वह बस, अवसर है।
वह क्या है, यह महत्वपूर्ण नहीं है।
वह क्या हो सकता है, बस, यही महत्वपूर्ण है।
सत्य से पूर्व शेष सब, संभावना है।
और, प्रत्येक संभावना सत्य के लिए द्वार है।
ऐसी कोई संभावना नहीं है, जो सत्य के लिए अवसर न बन सके।
इसलिए, निराश होने का कोई भी कारण नहीं है।
क्योंकि, निराशा भी आशा की अप्रगट दशा है।
रात्रि में सुबह का आवास है।
और, मृत्यु में जीवन का।
और, आत्म-घात के भाव में आत्म-साधना का अंकुर है।
शेष मिलने पर।
वहां सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
20-2-1969
(प्रति: स्वामी आनंद मैत्रेय, पटना)

27/ अनकहे शब्द और अनगाए गीत

प्यारी कुसुम,
प्रेम।

तेरा पत्र। जानता हूं कि कितना तू कहना चाहती है, और नहीं कह पाती है।
जीवन में जो भी सत्य है, सुंदर है--उसे कहना सदा ही कठिन है।
और, प्रेम से ज्यादा न तो कुछ और सत्य है, न सुंदर ही।
लेकिन, तेरे न कहने में भी बहुत कुछ कह ही दिया जाता है।
मौन की भी अपनी भाषा है।
और सारी भाषाओं से ज्यादा समर्थ।
और तू उसमें अति-कुशल है।
तेरे अनकहे शब्द मुझ तक पहुंच जाते हैं।
और तेरे अनगाए गीत भी।
कपिल को प्रेम।
असंग को आशीष।

रजनीश के प्रणाम
30-8-1969

(प्रतिः सुश्री कुसुम, लुधियाना, पंजाब)

19

28/ निष्प्रयोजनता का सौंदर्य

मेरे प्रिय,
प्रेम।

आपका पत्र पाकर आनंदित हूं।
सार्त्र कहते हैं कि मनुष्य एक व्यर्थ वासना है।
लेकिन, व्यर्थता (न्नेमसमेदमे) इतनी पूर्ण है कि उसे व्यर्थ कहना भी व्यर्थ ही है।
व्यर्थ का अर्थ भी अर्थ में ही है।
ऐसा लगता है कि जो अर्थ खोजने निकलता है, उसके हाथ में व्यर्थता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं पड़ता है।
अर्थ (ऊमंदपदह) की खोज से यह अनर्थ घटित होता है।
इसलिए, मैं कहता हूं: अर्थ न खोजें, वरन जो है, उसे जीएं।
खोजें न, जीएं।
विचारें न, जीएं।
साधें न, जीएं।
जीवन में डूबें और बहें।
तैरें भी न।
कहीं पहुंचना नहीं है।
और, तब जहां पहुंच जाते हैं, वही मंजिल हो जाती है।
जीवन फिर स्वयं ही अपना अर्थ है।
वह निष्प्रयोजन प्रयोजन (ढनतचवेमसमे ढनतचवेम) है।
और, यही उसका सौंदर्य भी है।

रजनीश के प्रणाम
अक्टूबर, 1969

(प्रति: स्वामी आनंद मैत्रेय, पटना)

29/ समझौता न करें--विचार स्वातंष्य के लिए लड़ें

मेरे प्रिय,
प्रेम।

"अग्नि-परीक्षा" को लेकर उठे विवाद से आश्चर्यचकित हूं।
उस पुस्तक में विवादास्पद कुछ भी नहीं है।
होता तो अच्छा था।
क्योंकि, विवाद विचार को जन्म देता है।
अगले संस्करण को विवादास्पद बनाने की कोशिश करें।
यह जानकर और भी आश्चर्यचकित हूं कि आप रक्षात्मक (डिफेन्सिव) रुख ले रहे हैं।
यह तो बहुत घातक है।
विचार स्वातंष्य और लोक-तांत्रिक परंपराओं के निर्माण में इससे बाधा पड़ेगी।
जो आपको सत्य और उचित मालूम होता है, उसके लिए लड़ें।
शांति को नहीं, सत्य को ध्यान में रखें।
वैसे असत्य और अज्ञान के समक्ष झुकने से शांति आ सकती है, इस भूल में पड़ने से बड़ी भूल नहीं है।
राम और सीता सबके हैं।
वे किसी की बपौती नहीं हैं।
सारा जगत उनके संबंध में सोचने को स्वतंत्र है।

यही उनकी महानता है।
उन्हें किसी धर्म या संप्रदाय के बाड़े में बंद किए जाने का विरोध किया जाना चाहिए।
इसके लिए अदालत में जाना पड़े, तो जावें।
अदालत से बचने की कोशिश न करें।
साधु के पास खोने को ही कुछ नहीं है।
इसलिए, भय का सवाल ही कहां है?

रजनीश के प्रणाम

(प्रति: आचार्य श्री तुलसी)

30/ कुण्डलिनी-ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन

प्रिय पद्मा,
प्रेम।

शरीर में विद्युत-ऊर्जा जैसा संचार शुभ है।
धीरे-धीरे शरीर-भान मिट जायगा--और ऊर्जा का बोध ही बचेगा।
पोद्गलिक (ऊंजमतपंस) शरीर एक भ्रांति है।
वस्तुतः तो, जो है, वह ऊर्जा (द्मदमतहल) ही है।
ऊर्जा (डपमि द्मदमतहल) ही अज्ञान में शरीर और ज्ञान में आत्मा प्रतीत होती है।
मस्तिष्क में धक्के लगेंगे।
लगेगा कि जैसे अब फटा--अब फटा।
लेकिन, भय न लाना।
जीवन-ऊर्जा के हाथों में स्वयं को छोड़ दो।
यही भगवत-समर्पण है।
ऐसे ही ब्रह्मरंध्र सक्रिय होगा।
ऐसे ही सहस्र पंखुरियों वाले कमल की कली टूटेगी और फूल बनेगी।

नाभि-केंद्र पर अपूर्व शांति का जो अनुभव हो रहा है, उसमें रमण करो।
उसमें डूबो--उससे एक हो जाओ।
जीवन-ऊर्जा का मूल-स्रोत ध्यान में आ रहा है--उसे पहचानो।
और, अब किसी भी अनुभव के संबंध में सोच-विचार मत करो।
अनुभव करो और अनुगृहीत होओ।

रजनीश के प्रणाम
13-12-1970

(प्रति: सुश्री पद्मा इंजीनियर, पूना)

31/ पूर्ण होने का विज्ञान है--शून्य होना

प्यारी मधु,
प्रेम।

झील में जैसे वर्षा का पानी भर जाता है, ऐसे ही शांत हुए मन में विराट
की शक्ति भर जाती है।

21

ध्यान है स्वयं को झील बनाना और फिर अनंत-अनंत स्रोतों से शक्ति उपलब्ध होने लगती है।
इस शक्ति की तरंगें ही तेरे अनुभव में आ रही हैं।
शून्य होते ही पूर्ण सब कुछ स्वयं के हाथों में ले लेता है।
लेकिन, नासमझ मनुष्य शून्य हुए बिना ही पूर्ण होने की कोशिश करता है! वैसा नहीं हो सकता है--इसलिए ही दुख फलित होता है।
वैसा नहीं ही हो सकता है--क्योंकि वह असंभव है।
वह वैसे ही असंभव है, जैसे कि झील बने बिना ही कोई वर्षा के पानी को आमंत्रण दे! और, असंभावना और भी असंभव हो जाती है, क्योंकि हम झील तो बनते ही नहीं, उलटे और, अहंकार के शैल-शिखर बन कर आमंत्रण भेजते हैं।
पूर्ण होने का विज्ञान (एबपमदबम) है--शून्य होना।
शून्य से शून्य होते जाना है।
शून्य से महाशून्य होना है।
महाशून्य अर्थात जहां यह भी पता न रहे कि मैं शून्य हूं।
और बस, फिर स्वयं को कुछ भी नहीं करना पड़ता है।
फिर तो सब, बस होता है।
वही है मंजिल।
महाशून्य है मंजिल।
धैर्य से--अत्यंत धैर्य से उस ओर बढ़ती रह।
मैं आनंदित हूं कि महाशून्य के मंदिर की घंटियों के पहले स्वर तुझे सुनाई पड़ने लगे हैं।

रजनीश के प्रणाम
28-12-1970

(प्रति: मा आनंद मधु, आजोल, गुजरात)

32/ अलौकिक अनुभवों की वर्षा--कुंडलिनी जागरण पर

मेरे प्रिय,
प्रेम।

कुंडलिनी जागती है, तो ऐसा ही होता है।
विद्युत दौड़ती है शरीर में।
मूलाधार पर आघात लगते हैं।
शरीर गुरुत्वाकर्षण (फतंअपजंजपवद) खोता मालूम पड़ता है।
और, अलौकिक अनुभवों की वर्षा शुरू हो जाती है।
प्राण अनसुने नाद से आपूरित हो उठते हैं।
रोआं-रोआं आनंद की पुलक में कांपने लगता है।
जगत प्रकाश-पुंज मात्र प्रतीत होता है।
इंद्रियों के लिए बिल्कुल अबूझ अनुभूतियों के द्वार खुल जाते हैं।
प्रकाश में सुगंध आती है।
सुगंध में संगीत सुनाई पड़ता है।
संगीत में स्वाद आता है।
स्वाद में स्पर्श मालूम होता है।
तर्क की सभी कोटियां (ींजमहवतपमे) टूट जाती हैं।
और, बेचारे अरस्तू के सभी नियम उलट-पुलट हो जाते हैं।
कुछ भी समझ में नहीं आता है और फिर भी सब सदा से जाना हुआ मालूम होता है।
कुछ भी कहा नहीं जाता है और फिर भी सब जीभ पर रखा प्रतीत होता है।
"गूंगे के गुड़" का अर्थ पहली बार समझ में आता है।
आनंदित होओ कि ऐसा हुआ है।

अनुगृहीत होओ कि प्रभु की अनुकंपा है।

रजनीश के प्रणाम
29-12-1970

(प्रति: श्री राजेन्द्र आर. अन्जारिया, अहमदाबाद)

33/ मौन-प्रवचन

प्रिय वेदांत भारती,
प्रेम।

बुद्ध का एक शिष्य थाः सुभूति।
वह एक दिन वृक्ष के तले मौन बैठा था--ऐसे, जैसे हो ही नहीं।
शून्य में डूबा--शून्यता से एक हुआ।
और, फिर अचानक उसके चारों ओर फूल बरसने लगे--फूल ही फूल!
वह फूलों से ही ढंक गया--तब उसे ख्याल आया कि यह क्या हो रहा है!
फूलों की तो ऋतु भी नहीं थी और वृक्ष पर एक भी फूल न था।
उसने चारों ओर देखा--चकित--विस्मित!
और, तब देवों ने उसके कान में कहा: शून्यता पर आपके प्रवचन के लिए फूलों को बरसा हम अपना आभार प्रगट कर रहे हैं।
पर, सुभूति इससे और भी आश्चर्य में पड़ा।
उसने कहा: लेकिन, मैं तो शून्यता के संबंध में एक शब्द भी नहीं बोला हूं।
देव खूब हंसे और बोले: निश्चय ही आप शून्यता के संबंध में बोले नहीं,
और हमने भी शून्यता के संबंध में सुना नहीं--लेकिन यही तो सच्ची शून्यता है!
और, सुभूति पर फूल बरसते ही रहे--वर्षा की भांति।
ऐसे ही फूल तुम पर भी बरसें--यही कामना करता हूं।

रजनीश के प्रणाम
14-1-1971

(प्रतिः स्वामी वेदांत भारती, आजोल, गुजरात)

34/ शून्य के स्वर

प्यारे किरण,
प्रेम।

निश्चय ही जब कुछ कहने जैसा होता है, तो वाणी ठिठक जाती है।
और शब्दों की भीड़ की जगह निःशब्द का शून्याकाश उभर आता है।
प्रेम के निकट।
प्रार्थना के द्वार पर।
परमात्मा के स्परण में।
लेकिन, तब मौन भी बोलता है और शून्य में भी संवाद होता है।
जब भी तुम मेरे पास आए, तभी मैंने जाना कि बादलों से भरे आए थे, लेकिन अचानक आकाश से खाली हो गए हो।
और, इसके अतिरिक्त मेरे पास भी तो नहीं आ सकते थे न?
शून्य के पास शून्य होकर ही तो जाया जा सकता है न?

शब्द से मेरे साथ सेतु नहीं बनता है।
क्योंकि, मैं निःशब्द हूं।
बोलकर मुझसे कैसे बोलोगे?
क्योंकि, मैं सदा से चुप हूं।
दिन रात बोलकर भी!

रजनीश के प्रणाम
21-1-1971

(प्रति: श्री किरण, पूना, महाराष्ट्र)

35/ शब्दहीन संवाद में दीक्षा

प्रिय ब्रह्मदत्त,
प्रेम।

साथ ही हूं तुम्हारे।
बोलता भी हूं।
तुम सुनते भी हो।
लेकिन, निश्चय ही अभी समझ नहीं पाते हो।
यह द्वार है नया।
आयाम है अपरिचित।
भाषा है अनजान।
पर धैर्य रखो।
"धीरे-धीरे" सब समझ पाओगे।
शब्दहीन संवाद में दीक्षा दे रहा हूं।
मौन हो सुनते रहो।
समझने की अभी चिंता ही न करो।
क्योंकि, उससे भी मौन भंग होता है।
और, मन गति करता है।
अभी तो, बस सुनो ही।
सुनने की गहराई ही समझने का जन्म बनती है।

रजनीश के प्रणाम
22-1-1971

(प्रति: श्री ब्रह्मदत्त, बंबई)

36/ संसार और संन्यास में द्वैत नहीं है

प्रिय अगेह भारती,
प्रेम।

बाह्य और अंतस में समस्वरता लाओ।
पदार्थ और परमात्मा में विरोध नहीं है।
घर और मंदिर को दो जाना कि उलझे।
संसार और संन्यास में द्वैत नहीं है।
एक को ही देखो--दसों दिशाओं में।
एक को ही जीओ--श्वास-प्रश्वास में।
क्योंकि, एक ही है।

लहरों की अनेकता भ्रम है।
सागर का ऐक्य ही सत्य है।

रजनीश के प्रणाम
8-3-1971

(प्रति: स्वामी अगेह भारती, जबलपुर)

37/ दीये की ज्योति का एक हो जाना--महासूर्य से

प्यारी शिरीष,
प्रेम।

यौन केंद्र (एमगींमदजतम) प्रकृति से संबंध का द्वार।
और, ठीक ऐसे ही सहस्रार परमात्मा से संबंध का।
ऊर्जा (द्मदमतहल) एक ही है।
वही काम में बहती है, वही राम में।
लेकिन, यात्राएं भिन्न हैं।
दिशाएं भिन्न हैं।
परिणाम भिन्न हैं।
उपलब्धियां भिन्न हैं।
ध्यान प्रारंभ होता है--यौन-केंद्र से ही।
क्योंकि, वहीं मनुष्य है।
पर, गहराई के साथ-साथ ऊर्ध्वगमन होता है।
चेतना पानी की जगह अग्नि बन जाती है।
नीचे की जगह ऊपर की ओर बहाव शुरू होता है।
और, अंततः सहस्रार पर समस्त ऊर्जा इकट्ठी हो जाती है।
यह छलांग के पूर्व अनिवार्य तैयारी है।
और, जिस क्षण भी अविभाज्य रूप से समस्त जीवन-शक्ति (द्मसंद पिंजंस), सहस्रार पर संगृहीत होती है, उसी क्षण छलांग लग जाती है और दीये की ज्योति महासूर्य से एक हो जाती है।

रजनीश के प्रणाम
8-3-1971

(प्रति: साध्वी योग शिरीष, बंबई)

38/ अब अवसर आ गया है, इसलिए पुकारता हूं

प्यारी मृणाल,
प्रेम।

समय आ जाए अनुकूल।
घड़ी हो परिपक्व।
तभी तो पुकारा जा सकता है।
कच्चे फलों को पृथ्वी पुकारे भी तो वे उसकी गोद में नहीं गिरते हैं! और, अब अवसर आ गया है, इसलिए पुकारता हूं।
और, इसलिए ही तो तू सुन भी पाती है!
अन्यथा, पुकारना तो सदा आसान, पर सुन पाना तो उतना आसान नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
8-3-1971

(प्रति : सौ. मृणाल जोशी, पूना)

## 39/ जिसने स्वयं को जाना, वह आलोक से भर जाता है

प्यारी नीलम,
प्रेम।

अंधेरा है बहुत--निश्चय ही उदासी है।
मरघट-सी गहरी उदासी है।
लेकिन, उसका मूल-स्रोत स्वयं का अज्ञान है।
जाना जिसने स्वयं को, वह आलोक से भर जाता है।
नृत्य करते आनंदमग्न उत्सव से भर जाता है।

रजनीश के प्रणाम
8-3-1971

(प्रति : श्रीमती नीलम अमरजीत, लुधियाना, पंजाब)

## 40/ एक-एक बूंद से सागर भर जाता है

प्यारी कुसुम,
प्रेम।

यात्रा है अनंत।
माना।
पर एक-एक बूंद से सागर भर जाता है।
यात्रा है कठिन।
माना।
पर मनुष्य के छोटे से हृदय में उठे संकल्प से हिमालय भी तो झुक जाता है!

रजनीश के प्रणाम
8-3-1971

(प्रति : श्रीमती कुसुम, लुधियाना)

## 41/ मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ

प्रिय डाक्टर,
प्रेम।

काश! इतना समय होता हाथों में, जितना आप तट पर खड़े-खड़े सोच कर गंवा रहे हैं?
और, फिर समय भी बचे, लेकिन जरूरी कहां है कि अवसर भी बचे?
कबीर की पंक्ति है: मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ।
इसे कंठस्थ कर लें और यूं ही फुरसत में कभी-कभी दुहराते रहें!

जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ। मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ।

रजनीश के प्रणाम
8-3-1971

(प्रति: डाक्टर हेमंत शुक्ल, जूनागढ़)

42/ अमृत-वर्षा की बाढ़

प्रिय आनंद विजय,
प्रेम।

होती है जब प्रभु की वर्षा, तो ऐसी ही होती है।
सब द्वार-दरवाजे तोड़ कर उसके अमृत की बाढ़ आ जाती है।
आनंद सम्हाले नहीं सम्हलता है।
सीमाएं खो जाती हैं सब।
समझ-बूझ बह जाती है सब।
किनारों का कोई पता नहीं और मझधार ही किनारा हो जाती है! यहां उबरना ही डूबना और डूबना ही उबरना है।
इसलिए, अब डूबो--भूलो सब और डूबो।

रजनीश के प्रणाम
8-3-1971

(प्रति: स्वामी आनंद विजय, जबलपुर)

43/ उतरो अब उस नासमझी में

प्रिय आनंद विजय,
प्रेम।

अब उस बिंदु पर हो, जहां बहुत कुछ होगा और समझ कुछ भी नहीं पड़ेगा।
समझ से छुट्टी का क्षण आ गया है।
और, मनुष्य की तथाकथित समझ नासमझी को भुलाए रखने के अतिरिक्त और क्या है?
उतरो अब उस नासमझी में, जिसमें कि समझदार सदा ही उतरते रहे हैं!

रजनीश के प्रणाम
8-3-1971

(प्रति: स्वामी आनंद विजय, जबलपुर)

44/ स्वर्ग के भी पार होना है

मेरे प्रिय,
प्रेम।

शुभ है कि अनुभव करते हो कि नरक से निकले और स्वर्ग में गए।

ध्यान का यह पहला चरण है।
अभी एक चरण और बाकी है।
क्योंकि, स्वर्ग के भी पार होना है।
और, निश्चय ही दूसरा चरण पहले से कठिन है।
और, जिसने पहला नहीं उठाया, उसके लिए तो दूसरा असंभव ही है।
लेकिन, पहले के बाद दूसरे को उठाने की क्षमता भी आ जाती है।
क्योंकि, शीघ्र ही ज्ञात होता है कि सुख भी दुख ही है और स्वर्ग भी नरक
ही है।
जंजीरें लोहे की हों या सोने की, जंजीरों के जंजीर होने में फर्क नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
9-3-1971
(प्रति: श्री मदनलाल, अमृतसर)

45/ समस्त आयामों में हो रहा--अनादि-अनंत संगीतोत्सव

प्यारी शिरीष,
प्रेम।

शून्य में प्रवेश के पूर्व अति-सूक्ष्म शब्द की अनुभूति होती है।
वह शब्द अर्थातीत, पर अपूर्व शांतिदायी होता है।
ध्वनि-तरंगें (एवनदक रूंअमे) अस्तित्व के संगठक विद्युतकण-तरंगों (रुनंदजं) के लयबद्ध नृत्य में फलित होती हैं।
अस्तित्व का परमाणु-परमाणु अनंत नृत्य में लीन है।
बाहर-भीतर समस्त आयामों (क्पउमदेपवदे) में अनादि-अनंत संगीतोत्सव चल रहा है।
हम उलझे होते हैं व्यर्थ के दैनंदिन शोरगुल में, इसलिए उस संगीत का साक्षात्कार नहीं हो पाता है।
ध्यान में--जो सदा है, उसकी पुनः प्रतीति प्रारंभ होती है।
उस द्वार के ही तू निकट है, इसीलिए अहर्निश नाद की वर्षा हो रही है।
उसमें ज्यादा से ज्यादा लीन हो--उसे ज्यादा से ज्यादा सुन और उसमें डूब।
यही मूल शब्द है।
यही बीज मंत्र है।
यही वेद है।
और, इसके भी पार जो है, वही ब्रह्म है।

रजनीश के प्रणाम
9-3-1971

(प्रति: साध्वी योग शिरीष, बंबई)

46/ नया नाम--पुराने से तादात्म्य तोड़ने के लिए

प्रिय योग संबोधि,
प्रेम।

नया दिया है नाम तुझे--नये व्यक्तित्व के जन्म के लिए।
पुराने से तादात्म्य टूटे--शृंखला विशृंखल हो--इसलिए।

अंतराल पड़े बीच में --अलंघ्य खाई निर्मित हो --इस आशा में।
भूल जा जो थी --भूल जा उसे , जो स्वप्न की भांति आया और जा चुका है।
और, स्मरण कर उसका , जो सदा है --सनातन और नित नवीन !
चिर नूतन को पहचान।
यद्यपि वही अनादि भी है।

रजनीश के प्रणाम
9-3-1971

(प्रति : मा योग संबोधि , जबलपुर )

## 47/ निकट है तेरा नया जन्म

प्यारी मृणाल ,
प्रेम।

निश्चय ही तेरा नया जन्म निकट है।
तैयारी कर।
तिथि -तारीख सभी की तो घोषणा हो चुकी है !
मैं तैयार हूं कि शुभाशीष दूं।
बस, तेरी तैयारी की ही देर है।

रजनीश के प्रणाम
9-3-1971

(प्रति : सौ. मृणाल जोशी , पूना )

## 48/ संवादित प्रार्थना के स्वर

मेरे प्रिय ,
प्रेम।

अंगूर मिले।
मीठे थे बहुत --अंगूरों की सामर्थ्य से बहुत ज्यादा।
क्योंकि , रस उनमें पृथ्वी का ही नहीं , प्रार्थना का भी था।
और, अंगूर तो अब नहीं हैं --खो गए पृथ्वी में पुनः।
पर, उनसे संवादित प्रार्थना के स्वर अभी भी हैं।
यही तो है मजा --दृश्य बन भी नहीं पाता और मिट भी जाता है।
और अदृश्य है कि कभी बनता ही नहीं और फिर भी मिटता नहीं है !

रजनीश के प्रणाम
9-3-1971

(प्रति : श्री जवाहर बोहरा , अमरावती , महाराष्ट्र )

## 49/ समाधान --समाधि पर ही

प्रिय आनंद ब्रह्म ,
प्रेम।

मैं सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं देता हूं।
पहले तो सभी प्रश्न, प्रश्न ही नहीं होते हैं।
मात्र प्रश्न प्रतीत ही होते हैं।
दूसरे, कुतूहलों के समाधान के लिए, मेरे पास न समय है, न सुविधा है, न इच्छा है।
तीसरे, ऐसे प्रश्न भी हैं, जो वस्तुतः प्रश्न हैं और कुतूहल मात्र ही नहीं हैं, लेकिन जिनके समाधान समाधि के अतिरिक्त और कहीं नहीं हैं! तुम्हें तो मैं निश्चय ही समाधि में ले जाना चाहता हूं।
उसी ओर श्रम करो।
शक्ति सीमित है--समय अल्प है--अवसर अमूल्य है।
इसे ऐसे ही न खो देना।

रजनीश के प्रणाम
10-3-1971

(प्रति: स्वामी आनंद ब्रह्म, पूना)

50/ ध्यान से मन हो जाता है अनासक्त

प्रिय आनंद ब्रह्म,
प्रेम।

तुम्हारा ध्यान का अनुभव बहुत सांकेतिक है।
ध्यान गहराता है, तो ऐसा ही लगता है।
जैसे कि मन पारा है--है भी और छूता भी है। और फिर भी चिपकता नहीं है।
इसे और साधो।
नये-नये द्वार खुलेंगे और नये-नये साक्षात होंगे।

रजनीश के प्रणाम
10-3-1971
(प्रति: स्वामी आनंद ब्रह्म, पूना)

51/ स्वानुभव ही श्रद्धा है

मेरे प्रिय,
प्रेम।

अंधकार गया और प्रकाश आने लगा न?
काम-ऊर्जा, (एमग द्मदमतहल) में भी रूपांतरण शुरू हो गया न? और, थोड़े से ही ध्यान से!
ध्यान की शक्ति असीम है।
और, उसकी कीमिया का जादू अनंत है।
और भी शक्ति लगाओ।
और भी संकल्प से आगे बढ़ो।
और, अब तो श्रद्धा भी साथ देगी न? क्योंकि, स्वानुभव ही श्रद्धा है।

रजनीश के प्रणाम
10-3-1971

(प्रतिः श्री मदनलाल, अमृतसर)

52/ संन्यासी जाएंगे--अमृत-संदेश बांटने

प्यारी योग तरु,
प्रेम।

निश्चय ही संदेश को उन सब तक पहुंचाना ही होगा, जो कि प्यासे हैं और प्रतीक्षा में हैं।
और, बहुत हैं, जो कि प्यासे हैं और प्रतीक्षा में हैं।
ऐसे ही जैसे कि चातक स्वाति-नक्षत्र की बाट जोहता है।
और, वे प्यासे लोग पृथ्वी के कोने-कोने में हैं।
तुम्हें अमृत की खबर लेकर उन तक जाना होगा।
सब सीमाएं तोड़ कर--सब सरहदों के पार।
उस महाकार्य के लिए ही तो तुम संन्यासियों-संन्यासिनियों को निर्मित
कर रहा हूं।
मनुष्य की चेतना में एक बड़ी उत्क्रांति की घड़ी निकट है और मैं उसकी ही पूर्व तैयारी में लगा हूं।

रजनीश के प्रणाम
10-3-1971

(प्रतिः मा योग तरु, बंबई)

53/ संभावी क्रांति की प्रतीति

प्यारी योग तरु,
प्रेम।

मेरे कार्य की--संभावी क्रांति की पूरी प्रतीति तुम्हें नहीं हो सकती है।
लेकिन, फिर भी, उसकी रूपरेखा तो तुम्हारे स्वप्नों में भी झलक ही जाती है।
तुम्हारी बुद्धि, बहुत कुछ है, जिसे शायद नहीं पकड़ पाती है।
लेकिन, तुम्हारा हृदय तो तरंगित हो ही जाता है।
और, वही महत्वपूर्ण भी है।
क्योंकि, जो भी परम (न्नसजपउंजम) है, वह हृदय से ही अंकुरित होता है।

रजनीश के प्रणाम
10-3-1971

(प्रतिः मा योग तरु, बंबई)

54/ सिद्धियों में रस न लेना

प्रिय योग समाधि,
प्रेम।

31

योग से बहुत कुछ संभव है--अतींद्रिय, अलौकिक।
लेकिन, नियमातीत कुछ भी घटित नहीं होता है।
अतींद्रिय--अनुभवों और सिद्धियों के भी अपने नियम हैं।
चमत्कार भी, जो नहीं जानते उन्हीं के लिए चमत्कार हैं।
या फिर, अस्तित्व ही चमत्कार है।
पर, जहां तक बने, सिद्धियों में रस न लेना।
साधक के लिए उससे अकारण ही व्यवधान निर्मित होता है।

रजनीश के प्रणाम
10-3-1971

(प्रतिः मा योग समाधि, राजकोट)

55/ अतीत को टूटने दो--मिटने दो

प्यारी योग तरु,
प्रेम।

जन्मों-जन्मों का संग्रह है भीतर।
गहरी--अति गहरी अतीत की जड़ें हैं।
लेकिन, वे टूट रही हैं और इसलिए तुझे टूटे-टूटे होने की प्रतीति होती है।
इससे भयभीत न होना।
टूटने को पूरी तरह राजी रहना, क्योंकि उस टूटने और मिटने से ही, जो मैं चाहता हूं, वह अंकुरित होगा।
मिटाए बिना कुछ भी तो नहीं बनता हैं।
मृत्यु के बिना अमृत कहां है?

रजनीश के प्रणाम
11-3-1971

(प्रतिः मा योग तरु, बंबई)

56/ काम-ऊर्जा के अंतर्गमन का विधायक मार्ग

प्रिय योग समाधि,
प्रेम।

सिद्ध के लिए स्त्री-पुरुष में कोई भी भेद नहीं है।
पर, साधक के लिए है।
और, जितना कमजोर साधक हो उतना ही ज्यादा है।
भेद से अर्थ असमानता नहीं है--भेद से अर्थ है भिन्नता।
और, भिन्नता है, और प्रगाढ़ है।
जैविक अर्थ में दोनों के बीच अलंघ्य खाई है।
और, वही दोनों के बीच आकर्षण का सेतु भी है।
प्रकृति भिन्नता से आकर्षण निर्मित करती है।
ऐसे आकर्षण का नाम ही काम (एमग) है।
काम में जीवन-ऊर्जा (डपमि द्मदमतहल) का बहिर्गमन होता है।
साधक इसी ऊर्जा को अंतर्गमन में नियोजित करता है।
लेकिन, यह दमन से नहीं होना चाहिए।

दमन विकृति बन जाता है।
ऊर्जा का अंतर्गमन होना चाहिए विधायक (ढवेपजपअम)--विधायक अर्थात काम
से लड़ कर नहीं, वरन राम को चाहकर।

रजनीश के प्रणाम
11-3-1971

(प्रतिः मा योग समाधि, राजकोट)

57/ मैं हूं ही कहां--वही है

प्रिय धर्म रक्षिता,
प्रेम।

पागल! मेरा तुझ पर कोई उपकार नहीं है--क्योंकि मैं ही कहां हूं!
उपकार है, तो सब प्रभु का।
इसलिए, जब भी धन्यवाद दे, तो आकाश को धन्यवाद देना--निर्गुण को, निराकार को।
अनुग्रह माने, तो उसका ही मानना--अनादि का, अनंत का।
ध्यान रखना कि मुझे कभी भी तेरे और उसके बीच न लाना।
मैं हूं भी नहीं।
क्या तुझे मैं पारदर्शी (ैंतंदेचंतमदज) नहीं दिखाई पड़ता हूं?

रजनीश के प्रणाम
11-3-1971

(प्रतिः मा धर्म रक्षिता, बंबई)

58/ तैयारी--भविष्य के लिए

प्यारी योग तरु,
प्रेम।
तुम्हारे आंसुओं को मैं भलीभांति समझता हूं।
वे अतीत को पोंछ जाएंगे और भविष्य को जन्म देंगे।
वे सूखे पत्तों को बहा ले जावेंगे और नये पत्तों को शक्ति देंगे।
तुम्हारी साधना और तैयारी का यह अनिवार्य चरण है।
बहुत कुछ होने को है--उसके पूर्व अतीत से निर्भार होना है।
और, भविष्य के लिए तैयार भी।
भविष्य अनजान-अपरिचित मार्गों पर ले जाएगा।
अनजान-अपरिचित मित्रों में।
अनजान-अपरिचित कार्यों में।
और, तुम्हारी तैयारी पूरी होते ही मेरा आदेश मिल जाएगा।

रजनीश के प्रणाम
11-3-1971

(प्रतिः मा योग तरु, बंबई)

59/ पदार्थ परमात्मा की देह है

मेरे प्रिय,
प्रेम।

धर्म वासना के विरोध में नहीं है।
धर्म वासना के रूपांतरण के पक्ष में है।
जीवन-ऊर्जा (द्मसंद पिंजंस) पदार्थ की ओर बहे, तो वासना है और वही जीवन-ऊर्जा पदार्थ का अतिक्रमण करके बहने लगे, तो निर्वासना है।
पदार्थ का अतिक्रमण (ैंतंदेबमदकमदबम) ही परमात्मा की अनुभूति है।
पदार्थ परमात्मा का रूप है, गुण है।
परमात्मा पदार्थ में जो अरूप है, निर्गुण है, उसका ही नाम है।
पदार्थ परमात्मा की देह है।
परमात्मा पदार्थ की आत्मा है।

रजनीश के प्रणाम
11-3-1971

(प्रतिः श्री सुभाषचंद्र पांडे, सतना, म. प्र.)

60/ गूंगे का गुड़

मेरे प्रिय,
प्रेम।

नहीं, वर्णन नहीं कर सकोगे उसका, जो कि अनुभव के क्षितिज पर ऊगना प्रारंभ हुआ है।
क्योंकि, सब शब्द ज्ञात है।
और, जो उतर रहा है, प्राणों के गहरे में, वह नितांत अज्ञात है।
उसकी प्रत्यभिज्ञा (त्तमबवहदपजपवद) भी तो नहीं होती है।
जिसे पूर्व कभी जाना ही नहीं; उसे पहचानोगे कैसे?
और, मजा तो यह है कि वह अपूर्व-ज्ञात सदा-सदैव का जाना हुआ ही अनुभवित होता है!
यही है रहस्य--यही है पहेली, जो कि दो और दो चार की भांति सीधी और साफ
और सुलझी हुई भी है!
पर अनुभव (द्मगचमतपमदबम) में जो सुलझी-सुलझाई बात है, शब्दों में-- अभिव्यक्ति में उसी की उलझन का कोई अंत ही नहीं है।
इसलिए, शब्दों में पड़ो ही मत।
जानो और जीओ।
खाओ और खून बनाओ।
पीयो और पचाओ।
और, जब मन हो कहने का, तो पहले कुछ और कहने के कहोः गूंगे का गुड़!
और फिर, पहले गुड़ का स्वाद लो और बने तो फिर चुप ही रहो।

रजनीश के प्रणाम
11-3-1971

(प्रतिः श्री मदनलाल, अमृतसर, पंजाब)

61/ कूदो--असुरक्षा में, अज्ञात में, अज्ञेय में

प्रिय दिनेश भारती,
प्रेम।

जीवन है गति--सतत गति।
कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है--सब प्रवाह है।
इसे बुद्धि से समझना हो, तो किनारे बैठो और अध्ययन करो।
यद्यपि, जो भी इस भांति समझोगे, वह जीवन की समझ नहीं, वरन बुद्धि की मृत धारणा ही होगी।
क्योंकि, बुद्धि केवल मृत और ठहरे हुए चित्र ही दे सकती है और वे भी सदा तिथि-बाह्य (ठनज वि कंजम)--क्योंकि जीवन तब तक आगे निकल चुका होता है।
तट पर बैठना हो, तो जीवित फूलों का नहीं, बल्कि केवल सूखी पंखुड़ियों
का ही संकलन हो सकता है।
जीवन की राख लग सकती है हाथ--जीवन की अग्नि का दर्शन नहीं होता है।
जीवन से ही मिलना है, तो कूदो धारा में।
असुरक्षा में।
अज्ञात में।
अज्ञेय में।
तट पर बैठे रहना बिना पानी के ही डूबना है।

रजनीश के प्रणाम
11-3-1971

(प्रतिः स्वामी दिनेश भारती, खड़की, पूना)

62/ अज्ञेय (न्नदादवूंइसम) से मिलन

प्रिय दिनेश भारती,
प्रेम।
जीवन को कौन समझ सका है?
समझ की वहां सामर्थ्य ही नहीं है।
जीयो--समग्रता से जीओ--जीवन को जीना ही उसे जानना है।
फिर भी जो जान लिया, वह व्यर्थ हो जाता है, क्योंकि जीवन तो सदा अनजाने में है।
और, अनजाना कभी चुकता नहीं है।
वरन, जितना जानो, वह उतना ही बढ़ा हुआ प्रतीत होता है।
ज्ञान, और अज्ञान को ही उघाड़ता है।
ज्ञात (ज्ञदवूद), और अज्ञात (न्नदादवूद) के लिए द्वार से ज्यादा नहीं है।
और, अज्ञात (न्नदादवूद) में एक दिन अंततः उससे भी मिलन होता है, जो कि अज्ञेय (न्नदादवूंइसम) है।
वह अज्ञेय ही जीवन है--अस्तित्व है या परमात्मा है।

रजनीश के प्रणाम
11-3-1971

(प्रतिः स्वामी दिनेश भारती, खड़की, पूना)

63/ सीखने के लिए मन को सदा खुला रखो

प्रिय प्रेम चैतन्य,
प्रेम।
सीखने को जो तैयार है, वही शिष्य है।
शिष्यत्व कोई औपचारिकता नहीं है।
हृदय का भाव है वह।
और, स्वयं पर ही निर्भर है।
गुरु से तो पूछने की भी आवश्यकता नहीं है।
इसीलिए तो मैं कहता हूं कि आध्यात्मिक जीवन में शिष्य ही होते हैं, गुरु नहीं!
सीखो--और सदा सीखते रहो।
सीखने के लिए मन को सदा खुला रखो।
और, मेरे प्रति ही नहीं--सबके प्रति।
शिष्यत्व बंधन नहीं है और जहां बंधन है, वहां विष है।

रजनीश के प्रणाम
11-3-1971
(प्रतिः स्वामी प्रेम चैतन्य, पूना)

64/ गुरु सोए हुए ज्ञान को जगाने में निमित्त मात्र है

प्रिय प्रेम चैतन्य,
प्रेम।
ज्ञान भीतर है--स्वयं में है।
गुरु ज्ञान नहीं देता--केवल सोए ज्ञान को जगाने में निमित्त मात्र ही
हो सकता है।
और, वह भी तभी, जब शिष्य तैयार हो।
शिष्य की तैयारी का अर्थ है--समर्पण
या, अहंकार विसर्जन।
और साहस।
अर्थात, अज्ञात में छलांग लेने की तत्परता।

रजनीश के प्रणाम
11-3-1971

(प्रतिः स्वामी प्रेम चैतन्य, पूना)

65/ गैरिक वस्त्र साधक के लिए मंगलदायी

प्रिय दिनेश भारती,
प्रेम।
जब तक शरीर-भाव आमूल तिरोहित नहीं होता है, तब तक वस्त्रों का भी मूल्य है।
गैरिक वस्त्र उस रंग के निकटतम है, जो कि शरीर-भाव से अशरीरी-भाव में प्रवेश करते समय प्रकट होता है।
उनकी उपस्थिति साधक के लिए मंगलदायी है।
रंग, ध्वनि, गंध--सभी का चित्त-दशाओं से संबंध है।
प्रत्येक का आघात भिन्न है और भिन्न तरंग-जालों का स्रोत है।

अस्तित्व में जो क्षुद्रतम प्रतीत होता है, वह भी विराटतम से अनंत रूपों में संबद्ध है।
पदार्थ-परमाणु (ःजवउ) में विज्ञान ने अनंत ऊर्जा का उद्घाटन किया है।
वह सभी आयामों में सत्य है।

रजनीश के प्रणाम
12-3-1971

(प्रतिः स्वामी दिनेश भारती, पूना)

66/ अचेतन मन का पलायन--मृत्यु से बचने के लिए

प्रिय दिनेश भारती,
प्रेम।
कुंडलिनी-योग से ही तुम्हारे लिए मार्ग मिलेगा।
बचाव न खोजो--उपाय खोजो।
व्यक्ति व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न मार्ग उपयोगी होते हैं।
और मजा तो यह है कि अकसर ही जो व्यक्ति जिस मार्ग से बचना चाहता है, वही मार्ग उसके लिए होता है।
शायद, अचेतन मन (न्नदबवदेबपवने ऊपदक) स्वयं की मृत्यु से बचने के लिए पलायन खोजने लगता है!

रजनीश के प्रणाम
12-3-1971

(प्रतिः स्वामी दिनेश भारती, खड़की, पूना)

67/ साहस को जगाओ--सक्रिय करो

मेरे प्रिय,
प्रेम।
साहस बीज की भांति प्रत्येक में छिपा है।
कायर से कायर में भी।
कायर में भी साहस का अभाव नहीं है।
बस--इतना ही कि कायर साहस को सक्रिय नहीं कर पाया है।
साहस के बिना तो जीवन ही असंभव है।
एक श्वास लेना भी संभव नहीं है।
एक पल होना भी कम साहस नहीं है।
पर, यह निष्क्रिय साहस या अचेतन साहस से ही हो जाता है।
इतना आवश्यक है--पर पर्याप्त नहीं।
इससे जीवन एक टिमटिमाती मोमबत्ती की भांति जल तो लेता है, लेकिन आनंद
की जगमगाती मशाल नहीं बन पाता है।
मोमबत्ती को मशाल बना लेना ही धर्म है।
साहस का एक भी अवसर न चूको।
सक्रिय होने से ही वह क्रमशः नये सोपानों पर गतिमान होता है।

रजनीश के प्रणाम
12-3-1971

(प्रतिः श्री सुभाषचंद्र पांडे, सतना, म. प्र.)

## 68/ नव-संन्यास आंदोलन का महत कार्य

प्यारी योग तरु,
प्रेम।

निश्चय ही जो मुझे कहना है, वह कहा नहीं जा सकता है।
और जो कहा जा सकता है, वह मुझे कहना नहीं है।
इसलिए ही तो इशारों से कहता हूं--शब्दों के बीच छोड़े अंतरालों से कहता हूं।
विरोधाभासों (ढतंकवगमे) से कहता हूं या कभी न कह कर भी कहता हूं।
धीरे-धीरे इन संकेतों को समझने वाले भी तैयार होते जा रहे हैं और न समझने वाले दूर हटते जा रहे हैं--इससे काम में बड़ी सुविधा होगी।
नव-संन्यास आंदोलन से इन संकेतों के बीज पृथ्वी के कोने-कोने तक पहुंचा देने हैं।
और, हजार फेंके गए बीजों में यदि एक भी अंकुरित हो जाए, तो यह रिकॉर्ड तोड़ सफलता है!

रजनीश के प्रणाम
12-3-1971

(प्रतिः मा योग तरु, बंबई)

## 69/ शब्दों की मूर्च्छा और विचारों का सम्मोहन

मेरे प्रिय,
प्रेम।
अनंत के चिंतन में कुछ भी सार नहीं है।
क्योंकि, अनंत का चिंतन नहीं हो सकता है।
चिंतन सदा ही सीमा है और सीमा में है।
चिंतन को विदा करो, तो ही असीम आमंत्रित होता है।
सोचो नहीं--जागो।
सोचना भी स्वप्न है और निद्रा है।
शब्दों की अपनी मूर्च्छा है और विचारों का अपना सम्मोहन है।
शब्द से निःशब्द में सरको।
पार करो विचारों को और निर्विचार में उतरो।
मन है परिभाषा और सत्य है अपरिभाष्य।
इसलिए, मन का और सत्य का कहीं भी मिलन नहीं है।
जहां तक मन है, वहां तक सत्य नहीं है।
और, जहां मन नहीं है, वहीं सत्य है।

रजनीश के प्रणाम
12-3-1971

(प्रतिः श्री श्रीकांत नारायण लगगड़, संगमनेर, महाराष्ट्र)

## 70/ आकाश में छलांग--खिड़कियों से निकल कर

मेरे प्रिय,

प्रेम।

आकाश को खिड़कियों से मत देखो।
क्योंकि, खिड़कियां असीम आकाश को भी सीमाएं दे देती हैं।
और, सत्य को शब्दों से नहीं।
क्योंकि, शब्द निराकार को आकार दे देते हैं।
आकाश को जानना हो, तो खुले आकाश के नीचे आ जाओ।
अपनी-अपनी खिड़कियों को छलांग कर।
और, सत्य को जानना हो, तो निःशब्द में लीन हो जाओ।
अपने-अपने शब्दों को त्याग कर।
और, सोचो मत--करो और देखो।
क्योंकि, सोचने मात्र से खिड़कियों से छलांग नहीं लगती है और न ही शब्दों का ही अतिक्रमण होता है।

रजनीश के प्रणाम
12-3-1971
(प्रतिः श्री श्रीकांत नारायण लग्गड़, संगमनेर)

71/ सहायता--देशातीत व कालातीत की

प्रिय विजय मूर्ति,
प्रेम।

मैं यात्रा करूं या न करूं--बोलूं या न बोलूं; इससे कोई भी भेद नहीं पड़ेगा, उनके लिए जो कि मेरे साथ चलने को तैयार हैं।
उनके लिए रुके हुए भी मेरी यात्रा जारी रहेगी और मौन में भी मैं बोलता
ही रहूंगा।
शरीर भी मेरा निराकार में खो जाए, तो भी मेरे हाथों का सहारा उन्हें मिलता रहेगा।
और, आज ही नहीं--कभी भी; काल के अनंत प्रवाह में मैं उन्हें मार्ग दूंगा।
क्योंकि, अब मैं नहीं हूं--वरन स्वयं प्रभु ही मेरी बांसुरी से गीत गा रहा है।
जिनके पास आंखें हों--वे देख लें।
जिनके पास कान हों--वे सुन लें।
और, जिनके पास प्रज्ञा हो--वे पहचान लें।

रजनीश के प्रणाम
12-3-1971

(प्रतिः स्वामी विजय मूर्ति, पूना)

72/ चाह है जहां--वहां राह भी है

मेरे प्रिय,
प्रेम।

आश्वस्त रहो, मार्ग मिल जाएगा।
चाह है जहां--वहां राह भी है।
और, संकल्प है जहां--वहां सफलता भी।

द्वार बंद नहीं है प्रभु का।
तुम्हीं आंखें बंद किए हो।
बड़ी युक्ति से स्वयं ही अंधेरे में हो--जब कि अस्तित्व आलोक है! डरे-डरे, दूर-दूर न रहो।
आओ! पास आओ--ताकि मैं तुम्हारी बंद आंखों को खुलने का साहस दे सकूं।

रजनीश के प्रणाम
12-3-1971

(प्रतिः श्री चंपक लालजे सोलंकी, बंबई)

73/ स्वयं को बचाने में ही अज्ञान है

प्रिय आनंद नारायण,
प्रेम।

दुख है, तो प्रभु स्मरण।
सुख है, तो प्रभु स्मरण।
सब प्रभु को समर्पित करो।
स्वयं को जरा भी अलग न बचाओ।
उस बचाव में ही अज्ञान है।

रजनीश के प्रणाम
12-3-1971
(प्रतिः स्वामी आनंद नारायण, चिंचवड़, पूना)

74/ ध्यान--अशरीरी भाव--और ब्रह्म-भाव

मेरे प्रिय,
प्रेम।

ध्यान में शरीर-भाव खोएगा।
अशरीरी दशा निर्मित होगी।
शून्य का अवतरण होगा।
इससे भय न लें--वरन प्रसन्न हों, आनंदित हों।
क्योंकि यह बड़ी उपलब्धि है।
धीरे-धीरे ध्यान के बाहर भी अशरीरी-भाव फैलेगा और प्रतिष्ठित होगा।
यह आधा काम है।
शेष आधे में ब्रह्म-भाव का जन्म होता है।
पूर्वार्ध है--अशरीरी-भाव।
उत्तरार्द्ध है--ब्रह्म-भाव।
और श्रम में लगें।
स्रोत बहुत निकट है।
और संकल्प करें।
विस्फोट शीघ्र ही होगा।
और समर्पण करें।
और, स्मरण रखें कि मैं सदा साथ हूं; क्योंकि अब बड़ा निर्जन पथ सामने है।
मंजिल के निकट ही मार्ग सर्वाधिक कठिन होता है।
सुबह के करीब ही रात और गहरी हो जाती है।

रजनीश के प्रणाम
12-3-1971

(प्रतिः श्री नटवरसिंह , खेरवा , सौराष्ट्र )

## 75/ ध्यान के बिना ब्रह्मचर्य असंभव

प्रिय धर्म रक्षिता ,
प्रेम।

निश्चय ही ब्रह्मचर्य इतना ही सरल है --लेकिन ध्यान के बाद।
ध्यान के पूर्व कठिन ही नहीं , असंभव ही है।
पर, जाने बिना जानती कैसे ?
और, जाने बिना मानती कैसे ?

रजनीश के प्रणाम
12-3-1971

(प्रतिः मा धर्म रक्षिता , मलाड, बंबई )

## 76/ यात्राएं --सूक्ष्म शरीर से

मेरे प्रिय ,
प्रेम।

जो जाना , वह सत्य है।
मैं आता हूं।
तुम्हें जब भी मेरी जरूरत है --मैं आता हूं।
स्थूल शरीर की यात्राएं बंद कर रहा हूं , ताकि सूक्ष्म शरीर की यात्राओं पर ज्यादा ध्यान दे सकूं।
अज्ञात से --आकाश से तुम्हारे सिर पर उतरे हाथ मेरे ही थे और जिस आकृति को अचानक तुमने प्रत्यक्ष बनते और विलीन होते देखा , वह मेरी ही थी।
ऐसा अब जब भी हो , तब तत्काल गहरे ध्यान में चले जाना।
क्योंकि , तब तुम और भी बहुत कुछ जान , देख और समझ पाओगे।

रजनीश के प्रणाम
13-3-1971

(प्रतिः स्वामी चैतन्य बोधिसत्व , अहमदाबाद )

## 77/ अहंकार को समझो

मेरे प्रिय ,
प्रेम।

अहंकार के मिटाने में पड़े कि उलझे।
क्योंकि , जो नहीं है , वह मिटाया कैसे जा सकता है ?
इसलिए, मिटाओ नहीं --समझो।

अहंकार को खोजो--अहंकार को पहचानो।
लड़ो नहीं उससे--उसका साक्षात्कार करो।
उसका ज्ञान ही उससे मुक्ति है।
क्योंकि, जो खोजता है उसे, वह उसे नहीं पाता है।

रजनीश के प्रणाम
13-3-1971

(प्रतिः श्रीकांत नारायण लग्गड़, संगमनेर)

78/ संन्यास के संस्कार--पिछले जन्मों के

मेरे प्रिय,
प्रेम।

तुम्हारा यह लगना ठीक ही है कि जैसे मैं चौबीस घंटे तुम्हारे साथ हूं।
हूं ही।
बदलना है तुम्हें।
नया जन्म देना है तुम्हें।
तो तुम्हारा पीछा करना ही पड़ेगा न?
प्रभु के सैनिक तो तुम हो ही--बस, वर्दी पहन कर पंक्ति में खड़े भर हो जाने की देर है।
और, वह भी शीघ्र ही हो जाएगा।
तुम्हारी नियति की रेखाएं बहुत साफ हैं और तुम्हारे संबंध में आश्वासनपूर्वक भविष्यवाणी की जा सकती है।
विगत दो जन्मों के तुम्हारे संस्कार भी संन्यासी के हैं--तुम्हारी हड्डियां, तुम्हारे मांस, तुम्हारी मज्जा में फकीरी की गहरी छाप है।
अब जो बीज है, उसे वृक्ष बनाना है और जो संभावना है, उसे सत्य करना है।
और, मैं एक माली की भांति तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं।

रजनीश के प्रणाम
13-3-1971

(प्रतिः स्वामी आनंद निर्गुण, रायपुर, म. प्र.)

79/ बंधन स्वयं का निर्माण है

मेरे प्रिय,
प्रेम।

बंधनों से हो जाएगी मुक्ति--सरलता से।
क्योंकि, बंधन स्वयं से ही निर्मित हैं।
अन्य कोई नहीं बांध रहा है तुम्हें।
समस्त कारागृह आत्मा के स्वयं के ही श्रम हैं! न करो निर्मित उन्हें और तुम मुक्त हो।

रजनीश के प्रणाम
13-3-1971
(प्रतिः श्री शंकर लाल बी. रामी, अहमदाबाद)

80/ बढ़ो और मिटो--यही मेरी कामना है

मेरे प्रिय,
प्रेम।

स्वीकार--सर्व-स्वीकार में जीना और बहना ही आस्तिकता है।
और अंततः, स्वयं को शून्य में खो देना ही संन्यास।
जानता हूं कि सतत उसी दिशा में तुम्हारी यात्रा है।
आस्था से, आनंद से भरे उसी ओर बहती हुई तुम्हारी जीवन-धारा है।
सागर की पुकार भी रोज बढ़ती जाती है और तुम्हारी प्रवाह-गति भी।
शीघ्र ही होगा मिलन।
मिलन अर्थात विसर्जन।
सरिता का सागर में खो जाना।
लेकिन, वही सरिता का सागर हो जाना भी है।
बढ़ो और मिटो--यही मेरी प्रेरणा है।
बढ़ो और मिटो--यही मेरी कामना है।
बढ़ो और मिटो--यही मेरी प्रार्थना है।

रजनीश के प्रणाम
13-3-1971

(प्रतिः डा. बी. सी. भट्टाचार्य, पिंपरी, पूना)

81/ जो खाली हैं--वे भर दिए जाते हैं

प्यारी उर्मिला,
प्रेम।

निश्चय ही जो खाली हैं, वे भर दिए जाते हैं।
यही शाश्वत नियम है।
जो हारे ही हुए हैं, उनकी विजय सुनिश्चित है।
यही शाश्वत नियम है।
मृत्यु के लिए जो स्वागत से राजी हैं, वे अमृत को उपलब्ध हो जाते हैं।
यही शाश्वत नियम है।
इस नियम को सदा ध्यान में रखना--सदा स्मरण; क्योंकि इससे बहुमूल्य और कोई नियम नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
13-3-1971

(प्रतिः सुश्री उर्मिला, गोरखपुर)

82/ मेरा भरोसा रख

प्यारी पुष्पा,
प्रेम।

प्रभु के द्वार तक पहुंचाए बिना हाथ नहीं छोडूंगा।

भरोसा रख।
मैं हाथ छोड़ने के लिए पकड़ता ही नहीं हूं।
और, कभी यदि छोड़ता हुआ लगता भी हूं, तो सिर्फ और जोर से पकड़ने के लिए।

रजनीश के प्रणाम
13-3-1971
(प्रतिः श्रीमती पुष्पाजी, जालंधर, पंजाब)

83/ अहंकार की अतिशय उपस्थिति

प्यारी मौनू,
प्रेम।

आंखों के सामने है मार्ग--और दिखाई नहीं पड़ता है।
कानों के पास है पुकार--और सुनाई नहीं पड़ती है।
लेकिन क्यों?
क्योंकि, देखने वाला देखने के लिए अति-आग्रहशील है और इसलिए आंखें खुल नहीं पाती हैं।
और, सुनने वाला स्वयं में इतना केंद्रित हैं कि कान बहरे हो जाते हैं।

एक सदगुरु से पूछता है कोईः मार्ग कहां है?
कहा गया उससेः ठीक आंखों के सामने!
लेकिन पूछा उसने पुनः फिर मुझे दिखाई क्यों नहीं पड़ता?
कहा गयाः क्योंकि तुम अतिशय हो--अत्यधिक हो इसलिए ( लवन ंतम जवव उनबी्)।
पर वह माना नहीं और बोलाः आपके संबंध में पूछना चाहता हूं--क्या आपको दिखाई पड़ता है वह?
उत्तर आयाः आह! जब तक देखोगे दो को--"मैं" और "तू" को--तब तक आंखों में धुआं है!
पर नहीं--वह फिर भी नहीं माना और बोलाः क्या जब न "मैं" है, न "तू" है, तब
वह दिखाई पड़ेगा?
प्रत्युत्तर में मौन रहा बड़ी देर और फिर कहा गयाः पागल! जब न "मैं" है,
न "तू" तब उसे देखना ही कौन चाहता है?

रजनीश के प्रणाम
13-3-1971

(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

84/ ज्ञानोपलब्धि और अज्ञेय जीवन

प्यारी मौनू,
प्रेम।

ज्ञानियों से बड़े अज्ञानी नहीं हैं; क्योंकि, जीवन अज्ञेय है।
ज्ञान असंभव है; क्योंकि जीवन रहस्य है।
और, फिर भी, मैं कहता हूं कि जो सत्य की इस अज्ञेयता को समझ लेता है वह अज्ञान से मुक्त हो जाता है।
या ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है।

और, मैं ये दोनों ही विरोधी भासने वाली बातें एक ही साथ कहता हूं; क्योंकि जीवन रहस्य है!
एक झेन फकीर से किसी ने पूछाः मैं सत्य को खोज रहा हूं। मन की किस अवस्था के लिए मैं स्वयं को तैयार करूं कि सत्य को पा सकूं।
फकीर ने कहाः मन है कहां? इसलिए तुम उसे किसी भी अवस्था में कैसे रख सकते हो? और रहा सत्य--सो सत्य कहीं भी नहीं है, इसलिए उसे खोजोगे कैसे? स्वभावतः उस व्यक्ति ने कहाः जब मन ही नहीं है, तो तुम्हारे ये शिष्य किसका अयास कर रहे हैं? और जब सत्य ही नहीं है, तो इतने साधकों को क्या खोजने के लिए तुमने अपने आस-पास इकट्ठा कर रखा है?
फकीर ने सुना और कहाः लेकिन यहां तो इंच भर की भी जगह कहां है, जो मैं साधकों को इकट्ठा कर सकूं? और मैं तो कभी बोला ही नहीं, सो शिष्यों को शिक्षा कैसे दे सकता हूं?
चकित और क्रुद्ध हो उस व्यक्ति ने कहाः महाशय! झूठ की भी हद होती है?
फकीर हंसा और बोलाः लेकिन जब मैं आज तक बोला ही नहीं, तो झूठ कैसे बोल सकता हूं?
फकीर की हंसी ने उस व्यकित को कुछ होश दिया, तो उसने उदास हो कहाः मैं आपका अनुसरण नहीं कर पा रहा हूं--मैं आपको समझ नहीं पा रहा हूं!
फकीर खिलखिला कर देर तक हंसता रहा और फिर बोलाः मैं स्वयं ही स्वयं को कहां समझ पाता हूं!

रजनीश के प्रणाम
14-3-1971

(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

85/ बूंद-बूंद सुखों में--परमात्मा का विस्मरण

प्यारी मौनू,
प्रेम।

बुद्ध अक्सर कहते थे एक कथा।
वह मनुष्य की ही कथा है।
वह कथा पूरे संसार की ही कथा है।
कहते थे वेः एक यात्री किसी पर्वतीय निर्जन में पीछा करते एक पागल हाथी से बचने को भाग रहा है।
निश्चय ही जीवन और मृत्यु का सवाल है--उसके लिए और वह पूरी शक्ति लगा
कर दौड़ता है और पहुंच जाता है, एक ऐसी चट्टान के निकट, जिसके आगे कि भयंकर गड्ढा है और जिस पर कि मार्ग भी समाप्त होता है और पीछे लौटना संभव नहीं है, क्योंकि हाथी अभी भी पीछे चला आ रहा है।
मरता क्या न करता!
वह कोई और उपाय न देख एक लता को पकड़ कर खाई में लटक जाता है।
लता कमजोर है और किसी भी क्षण टूट सकती है।
वह नीचे झुककर खाई में देखता है तो एक सिंह मुंह बाये खड़ा है।
और, हाथी ऊपर चिंघाड़ रहा है।
और तभी वह देखता है कि दो चूहे लता की जड़ों को कुतर रहे हैं--दिन और रात
की भांति; एक उनमें सफेद है और एक काला है!
उन चूहों की गति तेज है और साफ है कि वे शीघ्र ही अपना कार्य पूरा कर लेंगे।
मौत अब जैसे सुनिश्चित है--आह! लेकिन तभी चट्टान के किनारे खड़े एक वृक्ष पर एक मधुछत्ता दिखाई पड़ता है।
उस मधुछत्ते से बूंद-बूंद मधु ठीक उसके ऊपर ही टपक रहा है।
जैसे बूंद-बूंद सुख।

वह मुंह खोल कर मधु की बूंद का स्वाद लेता है।
कितना मधुर है मधु।
कैसी मिठास है मधु में।
और मधु -मिठास के उस स्वाद -क्षण में मौत का साकार रूप वह पागल हाथी बिल्कुल ही भूल जाता है --उसकी चट्टानों को कंपाती चिंघाड़ें भी सुनाई नहीं पड़ती हैं और नहीं स्मृति रहती है --नीचे मुंह बाये खड़े सिंह की और एकमात्र सहारे को काटते हुए चूहे भी खो जाते हैं।
सत्य जैसे खो जाता है स्वप्न में।
ऐसा ही संसार है।
ऐसा ही संसार है।
ऐसा ही संसार है।

रजनीश के प्रणाम
15-3-1971
(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

## **86/** सत्य का द्वार शास्त्र नहीं **--**समाधि है

प्यारी मौनू,
प्रेम।

एक जीर्ण -शीर्ण मंदिर के बाहर वटवृक्ष की छाया में बैठा है फकीर दोकुआन (क्वानंद)।
सूरज ढलने को है।
पक्षी अपनी नीड़ों में लौट रहे हैं।
एक युवक यामाओका (द्वंउवां) दोकुआन से कह रहा हैः न कोई गुरु है, न कोई शिष्य --क्योंकि सत्य न दिया जा सकता है, न लिया। और जो हम सोचते हैं और अनुभव करते हैं कि यथार्थ है, वह सब अयथार्थ है --माया है। संसार शून्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है और जो भी प्रतीत होता है कि "है" वह सब स्वप्नवत है।
निश्चय ही वह युवक ज्ञान की बातें बोल रहा है!
निश्चय ही शास्त्रों से वह परिचित मालूम होता है!
और, दोकुआन है कि चुपचाप अपना हुक्का गुड़गुड़ा रहा है।
वह सुनता रहता है, बिना कुछ बोले और फिर अचानक हुक्का उठा कर उस युवक के सिर पर मार देता है।
यामाओका घबड़ाकर खड़ा हो जाता है।
उसकी आंखें क्रोध से भर जाती हैं।
दोकुआन हंसता रहता है और अंततः सिर्फ इतना ही बोलता हैः जब इनमें से किसी भी वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं है और सभी कुछ शून्य है, तब तुम्हारा क्रोध कहां से जन्म रहा है? इसके संबंध में सोचो। ( वि जीमेम जीपदहे तमंससल मगपेज ंद तिवउघ ैंपदा ंइवनज पज 1)
काश! ज्ञान की बातों से ज्ञान हो सकता और शास्त्र -शब्द सत्य बन सकते, तो जीवन में फिर कोई उलझाव ही क्या था?
पर, ज्ञान की बातें केवल अज्ञान को छिपाती हैं और शास्त्रों के शब्द अज्ञान के ओंठों पर असत्य से भी असत्य हो जाते हैं।
सत्य को जानना कठिन तपश्चर्या है, क्योंकि सत्य का द्वार अध्ययन नहीं, अनुभूति है --शास्त्र नहीं; समाधि है।

रजनीश के प्रणाम
16-3-1971
(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

87/ मैं मृत्यु सिखाता हूं

प्यारी मौनू,
प्रेम।

झेन फकीर एक प्यारी कहानी कहते हैं।
कहते हैं वे कि एक वृद्ध स्त्री थी--बुद्ध के समय में।
बुद्ध के ही गांव में जन्मी।
बुद्ध के ही जन्म-दिन पर जन्मी।
लेकिन, वह सदा ही बुद्ध के सामने आने से डरती रही।
तभी से, जब कि वह छोटी सी थी।
युवा हो गई, फिर भी डरती ही रही।
और, वृद्ध हो गई--फिर भी।
लोग उसे समझाते भी कि बुद्ध परम पवित्र हैं।
साधु हैं--सिद्ध हैं।
उनसे भय का कोई भी कारण नहीं है।
उनका दर्शन मंगलदायी है--वरदान स्वरूप है।
लेकिन, उस वृद्धा की कुछ भी समझ में न आता।
यदि, कभी भूल से वह बुद्ध की राह में पड़ भी जाती, तो भाग खड़ी होती।
अव्वल तो बुद्ध गांव में होते, तो वह किसी और गांव चली जाती।
लेकिन, एक दिन कुछ भूल हो गई।
वह कुछ अपनी धुन में डूबी राह से गुजरती थी कि अचानक बुद्ध सामने पड़ गए।
भागने का समय ही न मिला।
और, फिर, वह बुद्ध को सामने ही पा इतनी भयभीत हो गई कि पैरों ने भागने
से जवाब ही दे दिया।
उसे तो लगा कि जैसे उसकी मृत्यु ही सामने आ गई है।
भाग तो वह न सकी, पर आंखें उसने जरूर ही बंद कर लीं।
पर, यह क्या--बंद आंखों में भी बुद्ध दिखाई ही पड़ रहे हैं।
और, गैरिक वस्त्रों में स्वर्ण-सा दीप्त उनका चेहरा सामने है।
उसने दोनों हाथों से आंखें ढंक लीं।
पर, आश्चर्यों का आश्चर्य ही उस क्षण घटित होने लगा!
जितना ही करती है वह बंद आंखों को, बुद्ध उतने ही सुस्पष्ट प्रकट होते हैं!
आह! जितना ही ढंकती है वह आंखों को, बुद्ध उतने ही भीतर आ गए मालूम होते हैं।
नहीं--अब कोई बचाव नहीं है।
मृत्यु निश्चित है--और ऐसी प्रतीति के साथ ही वह वृद्धा खो जाती है और बुद्ध ही शेष रह जाते हैं!
और, झेन फकीर सदियों से पूछते रहे हैंः बताओ--वह वृद्धा कौन है?

रजनीश के प्रणाम
17-3-1971

(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

88/ धर्म की दो अभिव्यक्तियां--तथाता और शून्यता

प्यारी मौनू,
प्रेम।

सेहेई (एमपीमप) के शिष्य सुईबी (एनपइप) ने एक दिन अपने गुरु से पूछाः प्यारे गुरुदेव! धर्म का मूल रहस्य क्या है?
सेहेई ने कहाः प्रतीक्षा करो और जब हम दोनों के अतिरिक्त यहां कोई भी नहीं होगा, तब मैं तुझे बताऊंगा।
और फिर, उस दिन बहुत बार ऐसे मौके आए, जब कि वे दोनों एक ही झोपड़े में
थे और ऐसे हर मौके पर सुईबी ने कहाः गुरुदेव! अब हम दोनों ही यहां हैं, और तीसरा कोई भी नहीं है। --लेकिन हर बार वह अपना प्रश्न पूरा भी न कर पाता कि सेहेई अपने ओंठों पर अंगुली रख कर उसे चुप होने का इशारा कर देता!
ऐसे उसने बार-बार बताया कि "धर्म का मूल रहस्य मौन है"--लेकिन, सुईबी कुछ भी न समझा।
शब्द से ही समझने की जिद्द, सत्य को समझने में बड़ी से बड़ी बाधा है।
और फिर, सांझ हो गई और सेहेई का झोपड़ा बिल्कुल खाली हो गया।
सुईबी ने फिर पूछना चाहा, लेकिन फिर वही ओंठों पर रखी हुई अंगुली उत्तर में मिली।
और फिर, रात उतर आई और पूर्णिमा का चांद आकाश में ऊपर उठ आया।
सुईबी ने कहाः अब मैं और कब तक प्रतीक्षा करूं?
तब सेहेई उसे लेकर झोपड़े के बाहर आ गया।
सुईबी ने कहाः यहां अब कोई भी नहीं--अब तो कुछ कहें।
सेहेई ने तब सुईबी के कान में फुसफुसा कर कहाः बांसों के ये वृक्ष यहां लंबे हैं। और बांसों के वे वृक्ष वहां छोटे हैं। और जो जैसा है, वैसा है--इसकी पूर्ण स्वीकृति ही स्वभाव में प्रतिष्ठा है। और स्वभाव धर्म है।
और स्वभाव में जीना धर्म का मूल रहस्य है।
निःशब्द को जो न सुन सके--उसे शब्द से ज्यादा से ज्यादा बस इतना ही कहा
जा सकता है।
शब्द में धर्म की अभिव्यक्ति हैः तथाता (एनबीदमे)।
निःशब्द में धर्म की अभिव्यक्ति हैः शून्यता (विंपकदमे)।

रजनीश के प्रणाम
19-3-1971
(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

89/ सभी कुछ वही है

प्यारी मौनू,
प्रेम।

जो जानता है, उसके लिए परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
अर्थात सभी कुछ वही है।
क्षुद्र भी तब विराट और अणु भी आकाश है।
बूंद में समाए हैं तब समस्त सागर और नन्हीं-सी किरण में महासूर्यों
का आवास है।
तोझान (ैंव्रंद) उनमें से था एक, जो कि जानते हैं।
सुबह ही सुबह तराजू पर तौल रहा था वह कपास।
और, तभी एक शिष्य ने आकार उससे पूछाः गुरुदेव! बुद्ध कौन हैं? क्या हैं? कहां हैं? कृपा करें और स्पष्टतः बताएं मुझे।
तोझान ने कपास की ओर इशारा किया और कहाः यहां--पांच सेर कपास में।

रजनीश के प्रणाम
20-3-1971

(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

90/ स्वयं को खोल लो--आकाश की भांति--विस्तीर्ण, मौन, निःशब्द

प्यारी मौनू,
प्रेम।

जोशु (श्रवेन) ने पूछा अपने गुरु नानसेन (छंदेमद) सेः सत्य का सम्यक मार्ग क्या है?
नानसेन बोलाः अति साधारण है वह मार्ग। दैनंदिन का ही है वह मार्ग। चलते हो जिस पर प्रतिदिन, वही है वह मार्ग।
जोशु ने पूछा तबः क्या मैं उसका अध्ययन कर सकता हूं?
नानसेन ने कहाः नहीं--क्योंकि जितना ही तुम उसका अध्ययन करोगे, उतने
ही उससे दूर हो जाओगे। जितना ही सोचोगे उसे--उतनी ही दूर भटकोगे उससे। इधर आया विचार कि उधर खोया मार्ग!
स्वभावतः चकित हो जोशु ने कहाः जब मैं उसका अध्ययन ही नहीं कर सकता हूं, तो उसे जानूंगा कैसे?
इस पर नानसेन हंसा और चुप हो गया।
थोड़ी देर जोशु ने मौन में प्रतीक्षा की और पुनः प्रार्थना कीः कुछ तो कहें कि वह मार्ग कैसा है?
तब नानसेन आकाश की ओर देखने लगा और बोलाः वह मार्ग दृश्य वस्तुओं में
से नहीं है--न ही अदृश्य वस्तुओं में से है। वह न ज्ञात की कोटि में आता है, न अज्ञात की। उसे खोजो मत। उसे विचारो मत। और न ही उसे कोई नाम दो। और यदि पाना है स्वयं को उसके ऊपर, तो बस, स्वयं को खोल लो आकाश की भांति विस्तीर्ण--( वद पजै वचमद लवनतेमसिूपकमें जीमेल्)।

यही है राज--स्वयं को पाने का।
और स्वयं को खोने से गुजरता है यह मार्ग।
मन बनाता है सीमाएं।
और, आत्मा है असीम--आकाश की भांति असीम।
और, विचार करता है परिभाषाएं।
और, प्राण मांगते हैं अनुभूति!
बुद्धि के पास हैं शब्द--कोरे शब्द।
और, सत्य है सदा मौन।
बुद्धि चुप हो--शब्द हों शांत, तो मार्ग यहीं है--अभी और यहीं--बस, प्रत्येक के पैरों तले।
और, बुद्धि हो मुखर और विचार बुनते हों जाल, तो मार्ग कहीं भी नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
20-3-1971

(प्रतिः मा योग क्रांति, जबलपुर)

91/ मन के द्वंद्वों के प्रति सजगता

मेरे प्रिय,
प्रेम।

मन जीता है द्वैत में।
और, विकल्पों की लहरों से द्वैत निर्मित होता है।
जब उठें विकल्प मन में, तब करें कुछ भी नहीं।

दोनों के पार खड़े हो--देखें।
न भोगें, न दमन करें।
वरन भोग और दमन--दोनों इच्छाओं को देखें।
ऐसे क्षण में श्वासें गहरी लें, तो जागरूकता की लपट तेज हो सकेगी।
शायद मन कहेगा कि यह तो दमन है!
तो इस मन को भी जानें--देखें।
और फिर, शीघ्र ही विकल्प खो जावेंगे और द्वैत के पार अद्वैत की झलक मिलेगी।

रजनीश के प्रणाम
1-4-1971

(प्रतिः डा. मदन, गाजीपुर, उ. प्र.)

92/ जीवन एक अभिनय है

प्यारी नीलम,
प्रेम।

जानकर खुश हूं कि अभिनय के प्रयोग से तेरी शांति बढ़ी है।
जीवन एक अभिनय से ज्यादा नहीं है, इसे चेतना में जितना गहरा उतार सके उतना ही मंगलदायी है।
उठते-बैठते, सोते-जागते इस महासूत्र को स्मरण रख: जीवन एक अभिनय है।
श्वास-प्रश्वास में इसे पिरो ले।
तेरे लिए फिलहाल यही ध्यान है।
शांति इतनी हो जाए कि उसका पता भी न चले।
वस्तुतः, पता तो अशांति का ही चलता है न?
शांति की गहनता से सत्य में छलांग अति आसान है।
"संसार स्वप्न है", इस प्रतीति से, "प्रभु सत्य है", इस अनुभूति में उतर जाना कठिन नहीं है।
तू शांति को संभाल ले, फिर तो तुझे मैं सत्य में धक्का दे ही दूंगा।

रजनीश के प्रणाम
1-4-1971

(प्रति: सुश्री नीलम अमरजीत, लुधियाना, पंजाब)

93/ शास्त्रों से मनपसंद अर्थ निकालने की कुशलता

प्रिय कृष्ण सरस्वती,
प्रेम।

शास्त्र दया योग्य हैं।
क्योंकि, आदमी उनमें से वही निकाल लेता है, जो कि निकालना चाहता है। शास्त्र आदमी के समक्ष बहुत असमर्थ हैं।

प्रसिद्ध आंग्ल-अभिनेता चार्ल्स बेनिस्टर (ींंतसमे ईंददपेजमत) को किसी भोज में शराब पीते देख कर उसके निजी चिकित्सक ने रोका और कहा: अब उस गंदी चीज को और न पीओ--और मैं कितनी बार तुमसे नहीं कह चुका हूं कि पृथ्वी पर शराब से बड़ा शत्रु तुम्हारा और कोई भी नहीं है?

बेनिस्टर ने शराब पीते-पीते कहा: ज्ञात है मुझे, लेकिन क्या धर्मशास्त्र में यह आदेश नहीं दिया गया है कि शत्रुओं को प्रेम करो?

रजनीश के प्रणाम
1-4-1971

(प्रति: स्वामी कृष्ण सरस्वती, अहमदाबाद)

## 94/ आदमी की गहन मूर्च्छा

प्रिय कृष्ण सरस्वती,
प्रेम।

सोया हुआ होना साधारणतः लोगों के जीने का ढंग है।
और, आदत इतनी गहरी है कि स्मरण भी नहीं आता है।
और फिर, निरंतर अयास से कुशलता भी उपलब्ध हो जाती है।

एक धर्मगुरु ने एक दिन किसी चर्च में बोलना शुरू किया तो कहा: मैं आपके नगर जोहन्सटाउन में आकर अत्यंत आनंदित हूं।
और फिर, क्षण भर को रुका।
तभी एक व्यक्ति ने चौंक कर कहा: जोहन्सटाउन? नहीं, महोदय, ग्रीनवर्ग!
धर्मगुरु ने कहा: मुझे ज्ञात है; लेकिन, मैं जानना चाहता था कि यहां कोई जागा हुआ भी है या नहीं?

रजनीश के प्रणाम
2-4-1971

(प्रति: स्वामी कृष्ण सरस्वती, अहमदाबाद)

## 95/ बीज को लड़ना भी होगा--मिटना भी होगा

प्रिय चैतन्य प्रभु,
प्रेम।

तेरे आंसुओं का मुझे पता है और तेरे हृदय की धड़कनों का भी।
फिर भी मैं चुपचाप प्रतीक्षा करता हूं--वैसे ही जैसे कोई माली बीज बोकर उसके अंकुरित होने की प्रतीक्षा करता है।
बीज को लड़ना भी पड़ेगा--कठोर भूमि से संघर्ष अनिवार्य है।
और बीज को मिटना भी पड़ेगा--क्योंकि, वह मिटे तो ही अंकुर का जन्म हो सकता है।
पर, मैं तेरी शक्ति से आश्वस्त हूं और तेरे संकल्प से भी।

रजनीश के प्रणाम
2-4-1971

(प्रति: स्वामी चैतन्य प्रभु, पूना)

## 96/ प्रभु के द्वार पर कोई भी अपात्र नहीं है

प्यारी साधना,
प्रेम।

प्रभु के द्वार पर कोई भी अपात्र नहीं है।
लेकिन, उन अभागों के लिए क्या कहा जाए, जो कि उसके द्वार की ओर पीठ किए
ही खड़े रहते हैं!
और, कभी-कभी जब द्वार ही उनके सामने आ जाता है, तब भी वे आंखें बंद कर लेते हैं!
अपात्र, तो तू है ही नहीं; क्योंकि अपात्र कोई भी नहीं है।
और, अभागी भी नहीं है।
द्वार तेरे सामने है--नाच, गा और प्रवेश कर।
धर्म है--एक उत्सव।
गंभीर, उदास और रुग्ण चेहरों की वहां कोई भी गति नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
2-4-1971

(प्रति: मा अमृत साधना, पूना)

97/ मार्ग की कठिनाइयां--और जीवन-शिखर छूने की अभीप्सा

प्यारी योग तरु,
प्रेम।

मार्ग में कठिनाइयां तो सदा ही हैं।
लेकिन, जीवन-शिखर छूने की अभीप्सा ने कब उन्हें कठिनाइयां माना है।
और, स्मरण रखना कि सुबह होने के पूर्व अंधेरा सदा ही घना हो जाता है।
पर, जो जानते हैं, उनके लिए तो वह सुसमाचार है।
निःसंशय मन से आगे बढ़।
फिर, मैं तो साथ हूं ही न?

रजनीश के प्रणाम
2-4-1971

(प्रति: मा योग तरु, बंबई)

98/ पार उठो--विचारों के

मेरे प्रिय,
प्रेम।

स्वयं के मन की ही गहराई को कहां जानते हो अभी?
सतह की लहरों से ही तो परिचय है अभी केवल!
विचार नहीं हैं जहां, वहीं स्वयं से साक्षात्कार है।
छोड़ो--लहरों को।
पार उठो--विचारों के।
और, तब ही पाओगे पहचान--स्वयं को।
और, जो जान लेता है स्वयं को, उसे जानने को फिर कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

रजनीश के प्रणाम
2-4-1971

(प्रति : स्वामी आनंद निर्गुण , रायपुर , म. प्र .)

## 99/ समग्र प्राणों की आहुति --और सत्य का विस्फोट

मेरे प्रिय ,
प्रेम।

सत्य मिल सकता है --क्षण भर में।
चाहिए त्वरा।
समग्र प्राणों की आहुति देने का संकल्प -क्षण ही सत्य का विस्फोट बन जाता है।
अन्यथा , जन्म -जन्म खोते चले जाते हैं --व्यर्थ ही।
बिना किसी यात्रा के।
कोल्हू के बैलों जैसे।
रजनीश के प्रणाम
2-4-1971

(प्रति : स्वामी आनंद निर्गुण , म. प्र .)

## 100/ ध्यान की यात्रा में विचारों का बोझ

प्रिय कमला ,
प्रेम।

बढ़ो।
ध्यान में आगे बढ़ो।
ऊंची है चढ़ाई।
संकरा है मार्ग।
और, सिर पर है --व्यर्थ का बोझ।
बोझ को क्रमशः कम करो।
और, स्मरण रखना कि विचार पत्थरों से भी भारी होते हैं।

रजनीश के प्रणाम
2-4-1971

(प्रतिः श्रीमती कमला लक्ष्मीचंद , बंगलौर )

## 101/ बहुत तरह की अग्नियों में जलना होगा --निखरने के लिए

प्रिय दिनेश ,
प्रेम।

जीवन है मिट्टी मिले सोने जैसा।
इसलिए , स्वर्ण -शुद्धि का संघर्ष जरूरी है।
उससे घबड़ाओ न।
जलना ही होगा --बहुत तरह की अग्नियों में जलना होगा।

पर, उससे ही निखरोगे भी और आज जो अभिशाप है, अंततः उसे ही वरदान पाओगे।

रजनीश के प्रणाम
2-4-1971

(प्रतिः स्वामी दिनेश भारती, वाराणसी, उ. प्र.)

102/ मार्ग चुनने के पहले स्वयं की पहचान जरूरी

प्रिय लीला,
प्रेम।
प्रभु के अनंत मार्ग हैं।
लेकिन, चुनाव सदा ही साधक की रुचि और प्रकृति पर निर्भर है।
रुचि कभी-कभी समझ में स्वयं के नहीं भी आती है।
और, प्रकृति तो और भी गहरी और गहन है।
पर, सम्यक निरीक्षण से स्वयं की पहचान हो सकती है।
निरीक्षण की सुगम विधियां भी हैं।
और, ठीक निरीक्षण के पूर्व कुछ भी करने लगना ठीक नहीं है।
योग-साधना की अभीप्सा है, तो अकारण तो नहीं हो सकती है।
पर, बिना मिले मैं कुछ भी नहीं कह पाऊंगा।
आकर मिल जाओ।

रजनीश के प्रणाम
2-4-1971
(प्रतिः सौ. लीला अयंकर, पूना)

103/ हृदय की सरलता ही तो उसका द्वार है

प्यारी प्रेमा,
प्रेम।
अनायास ही तू प्रभु मंदिर के द्वार पर आकर खड़ी हो गई है।
जो सरल हैं, वे ऐसे ही--अनायास ही उसके द्वार पर आ जाते हैं
क्योंकि, हृदय की सरलता ही तो उसका द्वार है।
आनंद की वर्षा हो रही है तेरे ऊपर।
सर्व-स्वीकृति का भाव आया इधर कि उधर उसकी अनुकंपा के सदा से बरसने को आतुर मेघ वर्षा शुरू कर देते हैं।
आकांक्षा गयी कि आनंद आया।
मांग मिटी कि मांग पूरी हुई।
हृदय की वीणा बजेगी अब और प्राण नाचेंगे किसी अज्ञात धुन पर।
दीये जलेंगे अब अंतराकाश के।
और, अंधकार खोज कर भी कहीं न पा सकेगी।
श्वास-श्वास से अनुग्रह प्रकट कर प्रभु के प्रति।
सोते-जागते अनुग्रह प्रकट कर प्रभु के प्रति।
रजनीश के प्रणाम
2-4-1971

(प्रतिः सुश्री प्रेमा बाई, पूना)

104/ प्यास चाहिए--पुकार चाहिए

मेरे प्रिय,
प्रेम।
घर-घर में है गंगा।
हृदय-हृदय में है प्रियतम।
प्यास चाहिए।
पुकार चाहिए।
खटखटाओ--और द्वार खुल जाते हैं।
चाहो--और मिलन हो जाता है।

रजनीश के प्रणाम
2-4-1971
(प्रतिः श्री मल्लिकार्जुन सिद्ध अप्पा हिपलगे, धानुरा, मैसूर राज्य)

105/ समर्पित हृदय की अंतर्साधना

प्यारी साधना,
प्रेम।
तेरा समर्पित हृदय शीघ्र ही एक कमल की भांति खिल उठेगा।
उसी की तैयारी चल रही है अंतर्गर्भ में।
चक्र-चक्र पर तैयारी हो रही है।
प्रकाश और नाद के अनुभव बढ़ेंगे।
और, कभी-कभी लगेगा कि जैसे शरीर टुकड़े-टुकड़े होने जा रहा है।
पर, उससे भयभीत मत होना।
जो होता है, वही हो रहा है।

रजनीश के प्रणाम
2-4-1971

(प्रतिः मा अमृत साधना, पूना)

106/ कांटों को गिनते रहना पागलपन है

प्रिय अक्षय,
प्रेम।
गुलाब के साथ कांटे भी हैं।
पर, कांटों को गिनते रहना पागलपन है।
गुलाब के सौंदर्य में नाचो।
उसकी सुगंध के गीत बनाओ।
उसके आनंद में डूबो और फिर तुम पाओगे कि धीरे-धीरे कांटे भी फूल बनते
जा रहे हैं।

रजनीश के प्रणाम
3-4-1971

(प्रतिः स्वामी अक्षय सरस्वती, जबलपुर, म. प्र.)

107/ शांति का द्वार--जीवन की समग्र स्वीकृति

मेरे प्रिय,
प्रेम।

जीवन की समग्र-स्वीकृति ही शांति का द्वार है।
"जो है--है" और उससे अन्यथा न चाहना ही आस्तिकता है।
विराट के सागर में स्वयं का होना एक लहर से ज्यादा नहीं है।
और, लहर ने जैसे ही स्वयं की इच्छाओं के बीज बोए कि दुख आया।
लहर तो बस, लहर है--आई नहीं कि गई--ऐसा ही जानें तो ही आनंद है
ऐसा ही जानें स्वयं को।
और तब, क्रमशः "स्व" मिटेगा और "सर्व" का आविर्भाव होगा।
"जो है--है", इसे मंत्र की भांति ही स्मरण करते रहें--उठते-बैठते, सोते- जागते।
श्वास-श्वास में इसी भाव को भर जाने दें।
हृदय की धड़कनें यही कहें।
तन का रोयां-रोयां यही कहे।
सफलता में, असफलता में--शिखर पर या घाटियों में, प्राण--"जो है--है"-- इसका ही गान करें।
और, फिर प्रभु का प्रसाद चारों ओर बरसने लगेगा।
उसके अनुग्रह के फूल खिलने लगेंगे।
और, अंतस में होगा आलोक।
और, आत्मा में अमृत।

रजनीश के प्रणाम
3-4-1971

(प्रतिः श्री कृष्ण जी गणेश जोशी, बंबई)

108/ विवाद--अज्ञानियों के

प्रिय योग चिन्मय,
प्रेम।
नहीं जिन्हें पता है कुछ भी, वे भी सत्य के संबंध में अपना मत रखते हैं।
उनके मतों (ठचपदपवदे) के कारण ही व्यर्थ का विवाद है।
विवाद सत्यों के कारण नहीं है--विवाद मतों के कारण है।
सत्य तो संवाद है।
लिखा है खलील जिब्रान ने:
एक बार तीन व्यक्तियों ने देखा दूर से हरी भरी पहाड़ी पर स्थित एक छोटा
सा सुंदर भवन।
उनमें से एक ने कहा: यही है उस कुरूप बुढ़िया रूथ का मकान, जो कि एक पुरानी जादूगरनी है।
फिर दूसरा कैसे चुप रहे--उसने भी कहा: तुम गलती पर हो। श्रीमती रूथ तो
एक अति सुंदर नवयुवती है, जो कि सदा ही अपने सपनों में खोयी रहती है।
और फिर, तीसरा कैसे पीछे रहे--उसने भी कहा: तुम दोनों ही भ्रम में हो। श्रीमती रूथ न तो वृद्ध है, और न ही नवयुवती ही, और न ही वह कोई जादूगरनी है, और न ही कोई कवयित्री। श्रीमती रूथ तो एक अधेड़ महिला है। वही इस विस्तृत भूभाग की स्वामिनी है--अति कठोर और शोषक। उसके इस भवन की सफेदी के पीछे गरीब किसानों के खून की पर्त है।
स्वभावतः, उनका विवाद बढ़ता ही चला गया।
और फिर, अंतहीन मालूम होने लगा--जैसा कि सभी विवादों में होता है!

किंतु, जब वे एक चौराहे पर पहुंचे, तो भाग्य से उनकी भेंट एक वृद्ध से
हो गयी।
उन्होंने उस वृद्ध से पूछा: क्या आप उन श्रीमती रूथ के संबंध में कुछ बता सकेंगे, जो कि उस पहाड़ी पर स्थित सफेद मकान में रहती हैं?
इस पर उस वृद्ध ने सिर उठा कर उन व्यक्तियों की ओर साश्चर्य देखा और कहा: मैं नब्बे वर्ष का हूं और जब मैं नितांत बालक था, तभी से मुझे श्रीमती रूथ के संबंध में कुछ-कुछ याद है। परंतु श्रीमती रूथ का देहावसान हुए भी तो अस्सी वर्ष बीत गए हैं। और तब से ही यह मकान बिल्कुल खाली पड़ा है। वहां कभी-कभी उल्लू बोला करते हैं और कुछ लोगों का अनुमान है कि वहां प्रेतों का निवास है।

रजनीश के प्रणाम
10-4-1971
(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

109/ पूर्ण संकल्प में तुम स्वयं ही मंजिल हो

मेरे प्रिय,
प्रेम।

पूछते हो: मंजिल कितनी दूर है?
आह! मंजिल दूर भी है बहुत और अति निकट भी।
और, मंजिल की दूरी या निकटता मंजिल पर नहीं, स्वयं तुम पर ही निर्भर है।
संकल्प है जितना सघन, मंजिल उतनी ही निकट है।
संकल्प है यदि पूर्ण, तो तुम स्वयं ही मंजिल हो।

रजनीश के प्रणाम
13-4-1971

(प्रतिः स्वामी आनंद संत, अमृतसर)

110/ संसार में अभिनेता की भांति जीना योग्य है

मेरे प्रिय,
प्रेम।
ध्यान के पहले अवतरण में कर्म-रुचि सदा ही खो जाती है।
उपेक्षा पूर्ण शून्यता से भी गुजरना पड़ता है।
लेकिन, यह मंजिल नहीं--मार्ग की घटना है।
संक्रमण का ऐसा ही क्षण तुम्हारी यात्रा में भी आ उपस्थित हुआ है।
इससे भयभीत न होओ और प्रयासपूर्वक कर्म किए जाओ।
हां--स्वयं को कर्ता न जान सकोगे अब।
इसलिए, साक्षीभाव को और गहराओ और इस भांति कर्म करो जैसे कि अभिनय कर रहे हो।
और फिर, संसार में अभिनेता की भांति जीना ही तो योग है।

रजनीश के प्रणाम
14-4-1971

(प्रतिः स्वामी आनंद संत, अमृतसर)

111/ सहजता ही संन्यास है

प्रिय आनंद आलोक,
प्रेम।
सहजता ही संन्यास है।
सहज बहो--जैसे तिनका बहता है, सरिता में।
तैरे कि डूबे।
बचाया स्वयं को कि मिटे।

रजनीश के प्रणाम
14-4-1971

(प्रतिः स्वामी आनंद आलोक, संगमनेर)

112/ मन से मुक्ति

मेरे प्रिय,
प्रेम।
अस्तित्व आनंद-धर्मा है--आनंद स्वरूप है--आनंद अणुओं से ही निर्मित है।
लेकिन, मनुष्य-मन की आविष्कार की क्षमता भी अनंत है!
जो नहीं है--उसका भी वह आविष्कार कर लेता है!
दुख नहीं है--सुख भी नहीं है; पर मनुष्य-मन दुख-सुख में ही जीता है।
नरक नहीं है, पर मन उसे निर्मित करता है।
स्वर्ग स्वप्न है, पर मनुष्य-मन उसे सत्य की भांति देखता है।
और जो है--जो सदा है--मन उसे देखता ही नहीं है; क्योंकि उसके दर्शन में
मन की मृत्यु है।
मन का जीवन है द्वैत।
अद्वैत है उसकी मृत्यु।
और, जो है--वह अद्वैत है।
सुख-दुख में है द्वैत।
स्वर्ग-नरक में है द्वैत।
आनंद है अद्वैत।
मोक्ष है अद्वैत।
इसलिए, जहां भी हो द्वैत, वहां सावधान रहें--वहीं दुर्घटना होती है।
और, अद्वैत को हर द्वैत की स्थिति में स्मरण करते रहें; क्योंकि वहीं मुक्ति का द्वार है।
निश्चय ही वह मुक्ति मन की मुक्ति नहीं है--वह मुक्ति है मन से मुक्ति।
और, जो मन से मुक्त हुआ, वह अस्तित्व में प्रवेश कर जाता है।
या कहें आनंद में।
या कहें मोक्ष में।
या कहें ब्रह्म में।

रजनीश के प्रणाम
15-4-1971

(प्रतिः श्री कांतिलाल टी. सेठिया, धनबाद, बिहार)

113/ व्यक्ति का विसर्जन--प्रकाश में

प्यारी रजनी,
प्रेम।

प्रकाश और बढ़ेगा, इतना कि प्रकाश ही होगा और तू नहीं।
अंधेरे में तो स्वयं को प्रत्येक ने अनंत बार खोया है, पर अंधेरे में खोने से सिवाय दुख के और कुछ भी हाथ नहीं लगता है।
किंतु, जो स्वयं को प्रकाश में खोने की कुंजी पा जाता है, वह उस आनंद
को उपलब्ध होता है, जो कि नित्य है और अनादि है और अनंत है।

रजनीश के प्रणाम
15-4-1971

(प्रतिः कुमारी रजनी, पूना)

114/ अहिंसा--अनिवार्य छाया ध्यान की

मेरे प्रिय,
प्रेम।
ध्यान से मांसाहार तो कठिनाई में पड़ेगा ही।
अपने तथाकथित सुख के लिए अब दुख किसी को भी न दे सकोगे।
अहिंसा ध्यान की अनिवार्य छाया है।
और, उस ध्यान में कुछ चूक है, जिससे कि अहिंसा सहज ही फलित नहीं होती है।
अहिंसा को प्रयास से लाना पड़े, तो भी ध्यान में भूल है।
अहिंसा को भी जो साधते हैं, उन्हें वास्तविक अहिंसा का कोई पता ही नहीं है।
अहिंसा तो आती है--सहज--ध्यान के साथ-साथ--बस, ऐसे ही जैसे सूर्य के साथ प्रकाश।
आनंद मनाओ और प्रभु को धन्यवाद दो कि ऐसी ही अहिंसा का पदार्पण तुम्हारे जीवन में हो रहा है।

रजनीश के प्रणाम
15-4-1971

(प्रतिः स्वामी आनंद संत, अमृतसर, पंजाब)

115/ विचारों का विसर्जन

प्यारी रजनी,
प्रेम।
ध्यान में प्रकाश के साथ-साथ बीच-बीच में विचार आते हैं, तो उन्हें देखना--तीव्रता से--पूरी चेतना से--समग्र एकाग्रता से।
और, कुछ भी न करना--बस, द्रष्टा बनना।
पर, दृष्टि प्रगाढ़ हो और पैनी।
और, विचार खो जावेंगे।
बड़े कमजोर हैं बेचारे।
लेकिन, हमारी दृष्टि उनसे भी ज्यादा बेजान है--इसीलिए कठिनाई है।

अन्यथा, विचार से ज्यादा हवाई चीज और क्या हो सकती है?

रजनीश के प्रणाम
15-4-1971

(प्रतिः कुमारी रजनी, पूना)

116/ गहरे ध्यान में दर्शन--बिंदु का

प्यारी रजनी,
प्रेम।
नीले आकाश के वर्तुल में जो शुभ्र बिंदु चमकता है, उस पर ही एकाग्रता
को बढ़ा।
एकाग्रता के साथ ही इस बिंदु की शुभ्रता बढ़ेगी।
और, वह बिंदु भी बड़ा होगा।
और अंततः, यह बिंदु ही द्वार बन जाता है, स्वयं के ही रहस्य में प्रवेश का।
ध्यान के सातत्य में अब एक भी दिन चूक न करना।
जो बिंदु दर्शन दे रहा है, इसे पाना अति-कठिन और खोना अति-आसान है

रजनीश के प्रणाम
15-4-1971

(प्रतिः कुमारी रजनी, पूना)

117/ "स्व" से मुक्ति ही मोक्ष है

प्रिय आनंद आलोक,
प्रेम।
छोड़ो स्वयं को तो फिर प्रभु सम्हालता है।
अपने ही कंधों पर बैठे हैं जो--वे समझें भी तो कैसे समझें!
उतरो स्वयं पर से।
"स्व" का बोझ बहुत ढोया--अब और न ढोना।
"स्व" के कारागृह में मुक्त होते ही सर्व का खुला आकाश है--अब उसमें ही उड़ो।
"स्व" से मुक्ति ही मोक्ष है।

रजनीश के प्रणाम
15-4-1971

(प्रतिः स्वामी आनंद आलोक, संगमनेर, महा.)

118/ चक्रों के खुलते समय पीड़ा स्वाभाविक

प्यारी साधना,
प्रेम।
पीड़ा थोड़ी बढ़े, तो चिंतित मत होना।
चक्र सक्रिय होते हैं, तो पीड़ा होती है।
पीड़ा के कारण ध्यान को शिथिल न करना।

वस्तुतः तो, चक्रों पर पीड़ा शुभ-लक्षण है।
और, जैसे ही अनादिकाल से सुप्त चक्र पूर्णरूपेण सक्रिय हो उठेंगे, वैसे ही पीड़ा शांत हो जाएगी।
चक्रों की पीड़ा--प्रसव-पीड़ा है।
तेरा ही नया जन्म होने को है।
सौभाग्य मान और अनुगृहीत हो--क्योंकि स्वयं के जन्म को देखने से बड़ा
और कोई सदभाग्य नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
16-4-197

(प्रतिः मा अमृत साधना, पूना)

119/ स्वप्न-सा है--यह जीवन

मेरे प्रिय,
प्रेम।
स्वप्न-सा है यह जीवन--अभी है और अभी नहीं है।
नदी में उठी लहर की कहानी--अभी उठी, अभी गिरी।
फिर भी, मन कितना भरोसा करता है!
और, अंत में वह भरोसा ही धोखा सिद्ध होता है।
पर धोखा खाने में भी कैसा सुख है!
यद्यपि, सभी सुख केवल दुखों के द्वार हैं।
काश! नरक के द्वार पर नरक ही लिखा होता--नहीं, लेकिन नरक के द्वार पर स्वर्ग लिखा है।

रजनीश के प्रणाम
16-4-1971

(प्रतिः श्री सुखराज जैन, बरमान, म. प्र.)

120/ सोया हुआ आदमी--जीवन के तथ्यों के प्रति

मेरे प्रिय,
प्रेम।
द्वार से जब निकले अर्थी कोई, तो पूछने मत भेजना कि किसकी है--वह स्वयं
की ही है।
लेकिन, कुशल है मनुष्य का मन आत्म-वंचना में।
सोचकर कि मर गया फिर कोई; सो जाता है पुनः गहरी निद्रा में।
ऐसे ही जागने के अवसर चूकते ही चले जाते हैं। और व्यर्थ की ही दौड़-धूप में खो देते हैं हम, उसे जो कि हमारा ही था और मिल जाता तो सब मिल जाता।
अमृत है--स्वयं में।
लेकिन, जहर से फुरसत मिले तब न?

रजनीश के प्रणाम
16-4-1971

(प्रतिः श्री सुखराज जैन, बरमान, म. प्र.)

121/ गहरी निद्रा का बोध

मेरे प्रिय,
प्रेम।
जलती है ज्योति दीये में, तो स्मरण भी तो नहीं आता है कि तेल चुका जा रहा है!
और, ऐसे ही जीवन प्रतिपल मृत्यु बनता है।
और, हम तभी जागते हैं, जब मृत्यु ही आ जाती है।
गहरी है नींद, तभी तो मृत्यु के अतिरिक्त और कोई भी नहीं जगा पाता है! यद्यपि, फिर जागने का अर्थ ही क्या है?

रजनीश के प्रणाम
16-4-1971

(प्रतिः श्री सुखराज जैन, बरमान, म. प्र.)

122/ पकने दो--प्यास को

मेरे प्रिय,
प्रेम।
नहीं--प्यासे नहीं रहोगे।
देर है--अंधेर नहीं।
और, देर भी है, तो स्वयं ही के कारण।
प्यास पकेगी, तब ही तो कुछ होगा न?
फिर, कच्ची प्यास को छेड़ना उचित भी नहीं है।
पकने दो प्यास को। गहन होने दो--तीव्र होने दो।
झेलो पकने की पीड़ा।
झेलनी ही पड़ती है, क्योंकि निर्मूल्य कुछ भी नहीं है। मूल्य चुकाओ।
गुजरो जीवन से।
दुख से--संताप से।
नरकों से--स्वर्गों की आशा में।
बनाओ भवन ताशों के--क्योंकि और किसी प्रकार के भवन पृथ्वी पर बनते ही नहीं हैं!
और, हवा के झोंके जब उन्हें गिरा दें--तो रोओ।
टूटो और स्वयं भी उनके साथ गिरो।
तैराओ नावें कागजों की महासागरों में--क्योंकि आदमी और किसी भांति की नावें बनाने में समर्थ ही नहीं है।
और फिर, जब लहरों के थपेड़े उन्हें डुबा दें--तो पछताओ, जैसे कि सुखद स्वप्न टूट जाए, तो कोई भी पछताता है।
और, ऐसे ही यात्रा होगी।
और, ऐसे ही अनुभव शिक्षा देंगे।
और, ऐसे ही ज्ञान जगेगा।
और, पकेगी प्यास।
और, तुम स्वयं को दांव पर लगा, उसे खोजोगे, जो कि समस्त प्यासों के पार
ले जाता है।
वह तो निकट ही है--बस, तुम्हारी ही स्वयं को दांव पर लगाने की देर है।

रजनीश के प्रणाम
16-4-1971
(प्रतिः श्री राजेन्द्र खजांची, सावली, महा.)

123/ चित्त के दर्पण पर जन्मों-जन्मों की धूल

मेरे प्रिय,
प्रेम।
जल्दी न करें।
जन्मों-जन्मों के संस्कार हैं।
अनंत यात्राओं की धूलि चित्त के दर्पण पर है।
पर, ध्यान ने काम शुरू कर दिया है--संकल्प से, धैर्य से, निष्ठा से, श्रम में लगे रहें।
धीरे-धीरे सफाई होगी और दर्पण निखरेगा।
जहां से भी धूल हटेगी, वहीं स्वयं का प्रतिबिंब बनने लगेगा।
और, जैसा कि स्वाभाविक ही है, सफाई की अवधि में कभी-कभी तो धूल और भी ज्यादा मालूम होने लगेगी, पर उससे चिंतित न होना।
निश्चिंत होकर चलें।
ऐसा मैं अपने अनुभव से आश्वासन दिलाता हूं।

रजनीश के प्रणाम
16-4-1971

(प्रतिः श्री कालूराम अग्रवाल, जुगसलाई, बिहार)

124/ प्रतिपल स्मरण रख--जीवन नाटक है

प्यारी साधना,
प्रेम।
भीतर जी और बाहर अभिनय जान।
बाहर है नाटक--लंबा--जन्म से लेकर मृत्यु तक।
लंबा और एकांकी--परदा उठता है जन्म में और गिरता है मृत्यु में।
फिर, हम दर्शक भी हैं और पात्र भी।
इसीलिए, भूल जाते हैं कि जीवन नाटक है।
लेकिन, अब तू स्मरण रख।
प्रतिपल स्मरण रख।
यह स्मरण ध्यान के लिए गहरा सहारा है।

रजनीश के प्रणाम
17-4-1971

(प्रतिः मा अमृत साधना, पूना)

125/ साधना के कीमती क्षणों में सजगता

प्यारी साधना,
प्रेम।
अनजला दीया जैसे बस, जलने को हो--ऐसी ही तेरी स्थिति है।
या जैसे कली, बस, फूल बनने को हो।
द्वार पर ही तू खड़ी है और द्वार, बस, खुलने को है और तेरे पैर प्रवेश के लिए तैयार हैं।
ध्यान पर पूरी शक्ति लगा दे।
संकल्प में जरा सी भी कमी न रहे।
समर्पण हो पूरा।

और, जन्मों-जन्मों की अनंत-यात्रा में जिसे खोजा है, तू उसे पा लेगी।
इसलिए, अब एक-एक क्षण कीमती है।
और, ध्यान रखना कि जरा सा आलस्य और अवसर खो भी सकता है।

रजनीश के प्रणाम
17-4-1971
(प्रतिः मा अमृत साधना, पूना

126/ नया जन्म--शरीर के पार--मन के पार

प्यारी रमा,
प्रेम।
तेरे ध्यान से अति आनंदित हूं।
तेरे श्रम से भी।
तेरे संकल्प से भी।
और, तेरे समर्पण से भी।
अब निकट ही है द्वार।
निकट ही है वह मिलन, जिसके लिए तू जन्म-जन्म तड़पी है।
मंदिर आ गया है पास।
थोड़ा ही श्रम और।
थोड़ा ही साहस और।
और, लग जाएगी छलांग।
और, बनेगी तू द्विज।
नया होगा तेरा जन्म।
शरीर के पार।
मन के भी पार।
आत्मा का।

रजनीश के प्रणाम
18-4-1971

(प्रतिः मा योग शिवानी, अहमदाबाद)

127/ सत्य एक है--बस, नाम ही अनेक हैं

प्यारी रमा,
प्रेम।
वही हूं मैं, जो तूने पहचाना।
वही तू भी है--बस, पहचानने की ही देर है।
शिव कहो--राम कहो--रहीम कहो--सब शब्दों का ही भेद है।
क्योंकि, सत्य एक है--अस्तित्व एक है।
बस, नाम ही अनेक हैं।
रूप ही अनेक हैं।
सागर एक है--बस, लहरें ही अनेक हैं।

रजनीश के प्रणाम
18-4-1971
(प्रतिः मा योग शिवानी, अहमदाबाद)

128/ देखो अद्वैत को--पहचानो अद्वैत को

प्यारे कचु,
प्रेम।
पृथ्वी आकाश के विराध में नहीं है।
न ही पदार्थ चेतना के विरोध में है।
न ही संसार परमात्मा के विरोध में है।
विरोध की--द्वैत की भाषा ही अज्ञान की भाषा है।
पृथ्वी आकाश में ही है सदा-सदैव।
पदार्थ चेतना का विश्राम है या है निद्रा।
संसार परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है।
देखो अद्वैत को।
पहचानो अद्वैत को।
और फिर, तुम बंधनों में भी पाओगे कि मुक्त हो।

रजनीश के प्रणाम
18-4-1971
(प्रतिः स्वामी चैतन्य प्रभु, पूना)

129/ बढ़ो, बहो--सागर की ओर

प्रिय वेदांत सागर,
प्रेम।
सागर ने कब किस सरिता को स्वयं में गिरने से रोका है?
उसके द्वार तो सदा ही खुले हैं।
और, उसका निमंत्रण भी अहर्निश ही दिया जा रहा है।
पर, यात्रा सरिता को करनी ही पड़ती है।
और, वह मूल्य--उपलब्धि की दृष्टि से ना-कुछ ही है।
इसलिए, यह न सोचो कि सागर स्वीकार करेगा या नहीं--बढ़ो--बहो--सागर की ओर।
सोचने में समय न गंवाओ--क्या काफी समय पहले ही नहीं गंवा चुके हो?

रजनीश के प्रणाम
18-4-1971
(प्रतिः स्वामी वेदांत सागर, राजकोट)

130/ मृत्यु है द्वार--अमृत का

प्रिय अमृत सिद्धांत,
प्रेम।
पढ़ो आकाश को--क्योंकि वही शास्त्र है।
सुनो शून्य को--क्योंकि वही मंत्र है।
जीओ मृत्यु को--क्योंकि वही अमृत है।
और, गए शास्त्र में कि भटके।
और, पकड़े शब्द कि डूबे।
लिया सहारा मंत्र का कि किया छेद नाव में।
और, खोजना मत अमृत को।
क्योंकि--उसे ही खोजते तो जन्म-जन्म व्यर्थ ही गंवाए हैं।
खोजो मृत्यु को--मिलो मृत्यु से।
और, अमृत के द्वार खुल जाते हैं।

मृत्यु अमृत का ही द्वार है।

रजनीश के प्रणाम
18-4-1971
(प्रतिः स्वामी अमृत सिद्धांत, अहमदाबाद)

## 131/ जीओ जीवन को--पीओ जीवन को

प्रिय अमृत सिद्धांत,
प्रेम।
रहस्य है जीवन।
पहेली नहीं, जो कि सुलझ जाए।
सुलझाओ उसे जितना, उतना ही उलझता है।
और, सुलझाओ नहीं, तो सुलझा ही हुआ है!
जीवन समझने को नहीं--जीने को है।
समझने में पड़ा जो, वह जी तो पाता ही नहीं, समझ भी नहीं पाता है।
और, जीया जिसने गहरे में जीवन को, वह जीता तो है ही, समझ भी पाता है!
जीओ जीवन को।
पीओ जीवन को।
तट पर रुक कर सोचने में न पड़ो।
मझधार में डूबो।

रजनीश के प्रणाम
18-4-1971

(प्रतिः स्वामी अमृत सिद्धांत, अहमदाबाद)

## 132/ ध्यान में पूरी बाजी लगाओ

प्यारी पुष्पा,
प्रेम।
भरोसा न खोओ स्वयं पर।
इसी जन्म में सब-कुछ हो सकेगा।
बस, श्रम करो और शेष सब प्रभु पर छोड़ दो।
फल की आकांक्षा भर बाधा है।
ध्यान में पूरी बाजी लगाओ।
क्योंकि, सवाल ही जीवन-मृत्यु का है।
माना कि चुनौती बड़ी है।
पर, भीतर जो छिपा है, वह हर चुनौती से बड़ा है।

रजनीश के प्रणाम
19-4-1971

(प्रतिः श्रीमती पुष्पा, जालंधर, पंजाब)

## 133/ पीड़ा प्रार्थना बने--तो ही मुक्ति है

मेरे प्रिय,

प्रेम।

जानता हूं तुम्हारी पीड़ा।
नहीं कह पाते हो--इसलिए और भी जानता हूं।
पर बहुत झेली पीड़ा।
जन्मों-जन्मों और कुछ भी तो नहीं किया।
अब पीड़ा को बनाओ प्रार्थना।
अन्यथा, पीड़ा से मुक्ति नहीं है।
जुटाओ साहस--प्रभु-मंदिर में प्रवेश का।
छोड़ो अस्मिता।
क्योंकि, वही प्रभु-मिलन में बाधा है।

रजनीश के प्रणाम
19-4-1971

(प्रतिः श्री सरदारी लाल सहगल, अमृतसर, पंजाब)

134/ एक ही है मंत्र--समर्पण

मेरे प्रिय,
प्रेम।
एक ही है मंत्र--समर्पण।
समग्र समर्पण।
जरा सा भी बचाया स्वयं को कि खोया सब कुछ।
बस, खो दो स्वयं को--पूरा का पूरा।
बेशर्त।
निरपेक्ष।
और--और फिर, पा लोगे वह सब, जिसे पाए बिना जीवन एक लंबी मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
और, समझ कर करने के लिए मत रुके रहना।
क्योंकि, किए बिना समझने का कोई उपाय ही नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
19-4-1971
(प्रतिः श्री सरदारी लाल सहगल, अमृतसर)

135/ आंसुओं से सींचना--प्रार्थना के बीज को

प्रिय चैतन्य प्रभु,
प्रेम।
आंखों में हों आंसू और हृदय में प्रार्थना, तो जानना कि प्रभु को निमंत्रण भेज दिया गया है।
मनुष्य है अति-असहाय (भमसचसमे)।
इसे ठीक से पहचानना।
क्योंकि, कर-कर भी मनुष्य क्या कर पाता है?
असहाय होने के बोध में ही प्रार्थना का बीज अंकुरित होता है।
फिर, आंसुओं के जल से सींचना उसे।
क्योंकि, और कोई जल प्रार्थना के बीज के लिए काम का नहीं है।

रजनीश के प्रणाम

19-4-1971
(प्रतिः स्वामी चैतन्य प्रभु, पूना)

136/ अनेक द्वैतों को समाहित किए हुए--अद्वैत

प्रिय योग लक्ष्मी,
प्रेम।
जीवन और मृत्यु--कैसे विपरीत तथ्य, फिर भी अस्तित्व में एक! अस्तित्व द्वैत को तो जैसे मानता ही नहीं है।
अस्तित्व है अद्वैत।
लेकिन, फिर भी स्वरहीन नहीं।
वरन स्वरों से भरपूर--विपरीत स्वरों से भी।
अनंत द्वैतों को समाहित किए--किसी पूर्णतर एकत्व में।
अद्वैत अनेकता का अस्वीकार नहीं है--अन्यथा होता मृत।
अद्वैत है--अनंत अनेकत्व में ओत-प्रोत एकत्व।
अद्वैत है संगीत--अनगिनत स्वरों का।
स्वरों का अभाव नहीं--वरन स्वरों का संतुलन।
और, विपरीत दीखने वाले स्वर भी विरोधी नहीं हैं--सहयोगी हैं।
विरोध है ऊपर--गहराई में अविरोध है।
और, विरोध ने अविरोध को रौनक दी है--रसमय बनाया है।
पर, बुद्धि की सीमा है द्वैत।
और इसलिए, बुद्धि सतह से ज्यादा कभी नहीं जान पाती है।
खलील जिब्रान ने लिखी है एक कथाः
एक सहस्र वर्ष पूर्व मिले दो दार्शनिक, लेबनान की एक ढाल पर।
पूछा एक ने दूसरे सेः कहां जा रहे हो तुम?
दूसरे ने उत्तर दियाः मैं अमृत की खोज में निकला हूं। सुना है मैंने
कि इन्हीं पर्वतों में कहीं अमृत का झरना है। परंतु तुम यहां क्या खोजने आए हो?
दूसरे दार्शनिक ने कहाः जरूर ही तुम कोई भूल कर बैठे हो--क्योंकि शास्त्रों से मैंने जाना है कि इन्हीं पर्वतों में कहीं मृत्यु का राज छिपा है और मैं उसकी ही खोज में निकला हूं।
फिर, विवाद तो स्वाभाविक ही था।
जहां बुद्धि है, वहां विवाद है।
और, जहां विवाद है, वहां सत्य कहां?
अंततः प्रत्येक दार्शनिक इसी निष्कर्ष पर पहुंचा कि दूसरा अज्ञानी
है और उसे सत्य का कोई भी पता नहीं है।
और तभी, उस राह से एक व्यक्ति निकला, जिसे कि उसके पहाड़ी गांव के लोग पागल समझते थे।
उसने दार्शनिकों का विवाद सुना और फिर हंसा और बोलाः भद्रजनों, यदि तुम मुझ पागल की बात मान सको, तो विवाद में समय न गंवाओ और अपनी-अपनी खोज पर निकल पड़ो, क्योंकि तुम जो खोज रहे हो, उसका नाम जीवन है और वही अमृत है और वही मृत्यु भी।

रजनीश के प्रणाम
20-4-1971

(प्रतिः मा योग लक्ष्मी, बंबई)

137/ भीतर डूबो और भीड़ को स्वयं से बाहर करो

प्रिय कृष्ण कबीर,
प्रेम।
चेतना की सूक्ष्म वाणी प्रत्येक के पास है।
लेकिन, हम उसके प्रति व्यवस्थित रूप से बहरे बन गए हैं।
दूसरों के अनुगमन से प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को इतना दीन बना देता है
कि वह स्वयं को ही सुनने, जानने और मानने में असमर्थ हो जाता है।
और फिर, स्वभावतः, एक ऐसे नकली और थोथे जीवन का जन्म होता है, जो कि मृत्यु से भी ज्यादा मृत होता है।
कंठ हमारा, और वाणी दूसरों की!
बुद्धि हमारी और विचार दूसरों के!
समाज व्यक्ति को सब भांति नष्ट करता है।
और, भीड़ प्रत्येक की आत्मा पर कब्जा करना चाहती है।
इसलिए, क्रमशः भीतर डूबो और भीड़ को स्वयं से बाहर करो।
शांति के क्षणों में स्वयं को सुनने का प्रयास करो।
समाज के कारागृहों के अतिक्रमण (ैंतंदेबमदकमदबम) से ही तुम्हारे कान तुम्हें वापस मिलेंगे।
और तुम्हारी आंखें भी।
और, तुम भी।
और, स्वयं को पा लेना प्रभु के मंदिर को पा लेना है।

रजनीश के प्रणाम
18-5-1971

(प्रतिः स्वामी कृष्ण कबीर, बंबई)

138/ विचारों से गहरी--भावना

प्रिय आनंद परमहंस,
प्रेम।
भावना किसी भी विचार से अधिक मूल्यवान है।
क्योंकि, विचार सागर की सतह पर हवाओं के थपेड़ों से पैदा हुई लहरों से ज्यादा कुछ भी नहीं हैं।
हां, कभी-कभी इन्हीं थपेड़ों से लहरों पर झाग के शुभ्र मुकुट भी निर्मित हो जाते हैं!
पर, उनके धोखे में मत आना।
और, सूर्य की किरणें उन्हें कितने ही इंद्रधनुषों के रंग क्यों न दे दें; लेकिन वे सब रंग उन ढोल जैसे ही हैं, जो कि दूर से सुहावने मालूम पड़ते हैं।
भावना गहराई है।
भावना हृदय है।
भावना आत्मा है।
और इसलिए, जब विचारों की झाग से ठीक से परिचय हो जाता है, तो चेतना भावना की ओर मुड़ना शुरू करती है।
और, इस अंतस क्रांति के बिना जीवन के गहन सार से व्यक्ति दूर ही रह जाता है।
वह व्यर्थ के कंकड़-पत्थर तो खुद इकट्ठे कर लेता है, लेकिन गहरे में सदा ही दिवालियापन महसूस करता है।
भावना का अभाव भिखमंगापन है।
और, भावना में प्रतिष्ठा स्वयं के सम्राट का जन्म है।

रजनीश के प्रणाम
20-5-1971

(प्रतिः स्वामी आनंद परमहंस, जबलपुर)

139/ स्वयं में विश्वास प्रतिभा है

प्रिय आनंद परमहंस,
प्रेम।
स्वयं में विश्वास ही प्रतिभा है।
फिर चाहे कितनी ही भूलों से क्यों न गुजरना पड़े, एक न एक दिन सत्य के मंदिर में प्रवेश मिलता ही है।
स्वयं के भूल भरे पथ पर चल कर भी कोई सत्य तक पहुंच सकता है; लेकिन दूसरे के उधार सत्य पथ पर चल कर कोई कभी सत्य तक नहीं पहुंचा है।
प्रामाणिक रूप से (ःनजीमदजपबंससल) स्वयं होना ही सत्य को पाने की प्राथमिक पात्रता है।
इसलिए, वही सोचो जो कि तुम्हारा सोचना है।
और, वही करो भी।
और, वही जीओ भी।
निश्चय ही कठिन होगा मार्ग।
और, बहुत झेलनी होगी पीड़ा।
पर, और कोई विकल्प नहीं है।
और, प्रसव-पीड़ा के बिना स्वयं को जन्म देना असंभव है

रजनीश के प्रणाम
21-5-1971
(प्रतिः स्वामी आनंद परमहंस, जबलपुर)

140/ अंतर्ज्योति

प्रिय योग चिन्मय,
प्रेम।
पुस्तकों और परंपराओं को व्यर्थ बना दो और वही करो जो कि तुम सोचते हो
कि करने योग्य है--वह नहीं, जो कि लोग कहते हैं कि करो।
प्रकाश की उस किरण को खोजो, जो कि प्रभु ने प्रत्येक में छुपाई है।
ऋषियों के ज्योतिर्मय से ज्योतिर्मय वचन भी स्वयं की उस अंतर्ज्योति
के समक्ष फीके हैं।
क्योंकि, सत्य का कोई हस्तांतरण संभव नहीं है।
उसकी अनुभूति तो है, अभिव्यक्ति नहीं।
निज में, निजता में ही पाए बिना, उसे पाने की कोई और विधि नहीं है।

रजनीश के प्रणाम
21-5-1971

(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

141/ बस, सीधी चली आ

प्यारी चंदना,
प्रेम।
मधु और प्रिया को भेज रहा हूं, तुझे लेने को।

एक क्षण भी अब व्यर्थ खोना उचित नहीं है।
बस, सीधी चली आ।
सोचना हो जो भी, यहां आकर सोचना।
पूछना हो जो, मुझसे पूछना।
वैसे तो मुझे देखेगी, तो न सोचने को कुछ बचेगा, न पूछने को।

रजनीश के प्रणाम
24-5-1971

(प्रतिः साध्वी चंदना, कलकत्ता)

142/ अविचलता से स्वयं का अनुसरण करो

प्रिय योग चिन्मय,
प्रेम।
व्यक्ति स्वयं के विचारों की अवज्ञा कर देता है, क्योंकि ये विचार उसके ही होते हैं।
और, यही अवज्ञा अंततः आत्मघात सिद्ध होती है।
तुम्हारे लिए तुम्हीं सर्व प्रथम हो।
इसे क्षण भर को भी भूलना खतरनाक है।
यह अहंकार नहीं, सत्य की विनम्र स्वीकृति मात्र है।
आत्यंतिक अविचलता से स्वयं का अनुसरण करो।
अन्यथा, बाद में पछतावे के आंसुओं के अतिरिक्त आत्मा के पास कुछ भी नहीं होता है।
और, जब कि भीड़ की आवाजों की चीख तुम्हारे प्रतिपक्ष में हो, उस क्षण तो अत्यंत सावधानी से स्वयं में थिर रहना, क्योंकि चुनौतियों के ऐसे विरल क्षणों में ही निजता का जन्म होता है।

रजनीश के प्रणाम
25-5-1971

(प्रतिः स्वामी योग चिन्मय, बंबई)

143/ कर्मों का चट्टानी ढेर

प्रिय योग प्रार्थना,
प्रेम।
संघर्ष निश्चय ही कठिन है।
क्योंकि, जन्मों-जन्मों के रोग हैं साथ।
पर, विजय असंभव नहीं।
क्योंकि, स्वयं में प्रभु की अनंत शक्ति का आवास भी है।
कर्मों की सघन चार-दीवारी है चारों ओर।
और, द्वार मुक्ति का कोई भी नहीं।
जैसे, पहाड़ में खोदते हैं सुरंग--ऐसे ध्यान से कर्मों के चट्टानी ढेर में भी सुरंग खोदनी है।
पर, आशा और आस्था की बारूद निश्चय ही मार्ग बना लेती है।
हंसते और नाचते हुए आगे बढ़।
श्रम कर और शेष प्रभु पर छोड़ दे।

रजनीश के प्रणाम

71

6-6-1971

(प्रतिः मा योग प्रार्थना , बंबई )

## 144/ धैर्य और प्रतीक्षा

प्रिय तारा ,
प्रेम।
दूर नहीं है वह क्षण , जब तू सागर में प्रवेश करेगी।
या , सागर ही तुझमें प्रवेश करेगा।
पर , जल्दी नहीं करना।
अधैर्य बाधा है।
धैर्य द्वार है।
मौन प्रतीक्षा कर।
शून्य प्रतीक्षा कर।
प्रतीक्षा की भूमि में ही प्रभु का बीज अंकुरित होता है।

रजनीश के प्रणाम
6-6-1971

(प्रतिः मा योग तारा , बंबई )

## 145/ समर्पण है द्वार --परम जीवन का

मेरे प्रिय ,
प्रेम।
जीतने की कोशिश करोगे , तो हारोगे।
बचना चाहा , तो मिटोगे।
इसलिए , हार ही जाओ , तो जीत का हार तुम्हारे गले में है।
और, मिट ही जाओ , तो फिर मिटना असंभव है।
संकल्प नहीं --समर्पण ही परम जीवन का द्वार है।

रजनीश के प्रणाम
22-6-1971

(प्रतिः स्वामी रामकृष्ण भारती , बागरातवा , म. प्र .)

## 146/ बुद्धि की सीमा

प्यारी सुशीला ,
प्रेम।
तेरा पत्र।
और, जैसी आशा थी , वैसा ही।
पर , इतना भविष्यवाणी -योग्य (ढतमकपबजंइसम ) होना क्या ठीक है ?
पर , बुद्धि --तथाकथित ही --सदा ही भविष्यवाणी -योग्य ही होती है।
इसीलिए , जड़ (ऊंजजमत) ही उसकी ज्ञात -सीमा है।
और, अब तो जड़ भी भविष्यवाणी -योग्य होने से इनकार कर रहा है !
न भरोसा हो , तो भौतिकी (ढीलेपबे ) की नयी उदभावनाओं से पूछ।
रही अभौतिक (ऊमजंचीलेपबे ) की बात।

सो , वह तो है --बुद्धि -अतीत।
उस ओर तो समझ को छोड़ना ही समझदारी है।

रजनीश के प्रणाम
5-7-1971

(प्रतिः श्रीमती सुशीला सिन्हा , पटना )

## 147/ मृत्यु -बोध और आत्म -क्रांति

मेरे प्रिय ,
प्रेम।
मृत्यु जीवन का स्वभाव है।
जन्म से ही यह निश्चित है।
उसके लिए दुखी न हों।
और, अच्छा तो यह हो कि जागें --स्वयं की मृत्यु के प्रति जागें।
मृत्यु -बोध ही आत्म -क्रांति का पहला चरण है।

रजनीश के प्रणाम
12-12-1971

(प्रतिः श्री नागेश्वर प्रसाद सिंह , औंटा , बिहार )

## 148/ बस, ज्ञान ही मुक्ति है

प्रिय राहुल ,
प्रेम।
जिससे मुक्त होना चाहोगे , उससे ही और बंध जाओगे।
क्योंकि , मुक्ति नकार (छमहंजपवद ) नहीं है।
मुक्ति "किसी से " नहीं होती है और न "किसी के लिए " ही होती है।
क्योंकि , मुक्ति विधेय (ढवेपजपअम ) भी नहीं है।
मुक्ति निषेध और विधेय दोनों का ही अतिक्रमण है।
मुक्ति अर्थात द्वैत से मुक्ति।
वहां पक्ष कहां --विपक्ष कहां ?
प्रतिक्रिया किससे ?
विद्रोह कैसा ?
प्रतिक्रिया प्रज्ञा नहीं है।
और, विद्रोह पुराने का ही सातत्य (ींवदजपदनपजल) है।
इसलिए , समझो--लड़ो नहीं।
लड़कर कब किसने क्या पाया है ?
सिवाय दुख के --सिवाय पराजय के ?
इसलिए , जागो --भागो नहीं।
भागकर फिर और भागना पड़ता है।
और, फिर उसका कोई भी अंत नहीं है।
ज्ञान ही मुक्ति है।
भय नहीं , क्रोध नहीं , वैमनस्य नहीं , विद्रोह नहीं।
बस, ज्ञान ही मुक्ति है।

रजनीश के प्रणाम
28-2-1972

(प्रतिः श्रीयुत राहुल, आगरा)

149/ मन को भी जो देखता और जानता है--वही हो तुम

मेरे प्रिय,
प्रेम।
मन का भी जो साक्षी है--मन को भी जो देखता और जानता है--वही हो तुम।
उसकी ही सुनो।
उसका ही अनुसरण करो।
उसको ही जीओ।
शरीर भी उपकरण है।
मन भी।
मालिक--शरीर-मन--दोनों के ही पार है।
शरीर भी परिधि है।
मन भी।
केंद्र दोनों के ही अतीत है।
वही हो तुम।
उसमें ही ठहरो।
उसमें ही रमो।
वही हो तुम।
उसको ही जानो।
उसको ही पहचानो।
उसकी ही स्मृति रखो।
वही हो तुम।

रजनीश के प्रणाम
18-4-1971

(प्रतिः श्री एम. एल. राजोरिया, जबलपुर, म. प्र.)

150/ घूंघट के पट खोल

मेरे प्रिय,
प्रेम।
असत भी है।
नहीं है--ऐसा नहीं।
लेकिन, स्वप्नवत है।
अर्थात, होकर भी नहीं जैसा है।
सत अर्थात शाश्वत।
आकाश की भांति।
असत अर्थात अनित्य।
परिवर्तनशील।
बदलियों की भांति।
सत को पाना नहीं है।
क्योंकि, वह सदा ही मिला ही हुआ है।
असत को छोड़ना नहीं है।
क्योंकि, वह छोड़ने के लिए भी कहां है? देखो--दोनों को देखो।
दोनों के दर्शन करो।

दोनों को जानो।
न सत का लोभ रखो।
न असत का भय।
फिर हंसी आती है बहुत।
क्योंकि, असत सत का ही घूंघट सिद्ध होता है! सत का ही खेल।
सत की ही लीला।
सत के सागर पर ही उठी लहरें।
साधना का सार चार शब्दों में--घूंघट के पट खोल।

रजनीश के प्रणाम
6-3-1971

(प्रतिः श्री पुष्कर गोकाणी, द्वारका, गुज.)